संकल्प स्वरों के

[राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का कविता संकलन]

सम्पादक

हरीश भादानी

शिक्षा विभाग राजस्थान के लि

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
शिक्षक दिवस 1976 के अवसर पर प्रकाशित

चिन्मय प्रकाशन
चौड़ा रास्ता, जयपुर–302003
द्वारा प्रकाशित

सम्पादक
हरीश भादानी

विभागीय सम्पादक
शिवरतन थानवी
इन्द्रनारायण मूथा
चिरंजीलाल पुरोहित

सहायक
सुखदेव राठावत
रामनरेश सोनी

आमुख

शिक्षक दिवस के अवसर पर शिक्षा विभाग द्वारा राज्य के सृजनशील शिक्षक साहित्यकारों की विविध साहित्यिक विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित करने की योजना को हाथ में लिए दस वर्ष हो गए हैं। गत वर्ष तक 35 पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं। इस वर्ष ये पाँच पुस्तकें और आपके सामने हैं—

1. इस बार (कविता संकलन) संपादक-नंद चतुर्वेदी
2. संकल्प स्वरों के (कविता संकलन) संपादक-हरीश भादानी
3. बरगद की छाया (कहानी संकलन) संपादक-डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
4. चेहरों के बीच (कहानी संकलन) संपादक-योगेन्द्र किसलय
5. माध्यम (विविध संकलन) संपादक-विश्वनाथ सचदेव

मुझे प्रसन्नता है कि शिक्षा विभाग की इस प्रकाशन योजना का तथा राज्य के शिक्षकों की रचनाओं का न सिर्फ राजस्थान में ही अपितु अन्य राज्यों में भी व्यापक स्वागत हुआ है। देश के ख्यातिनामा विद्वानों तथा प्रमुख दैनिक साप्ताहिक व मासिक पत्रों ने इस योजना का स्वागत किया है और सराहना की है।

इस वर्ष करीब दो हजार रचनाएँ हमारे पास आयीं। उनमें उपन्यास इतने नहीं थे कि एकल प्रकाशन पर विचार किया जाता। ऐसे ही एकल संग्रह के लिए कविताओं और कहानियों के संग्रह भी कम ही आये थे। सामूहिक संकलन की दृष्टि से इस बार कहानियों और कविताओं की तादाद कुछ ज्यादा थी। इस कारण इन दोनों विधाओं के दो-दो संकलन निकालने का निर्णय लिया गया और इन विधाओं से इतर रचनाओं को विविध संकलन हेतु रखा गया।

रचनाओं के चयन और संपादन हेतु दो वर्ष पूर्व जो नीति निर्धारित की थी, वह इस बार भी रही, माने प्रतिष्ठित विद्वान साहित्यकारों ने हमारे आग्रह पर चयन व संपादन का सारा कार्य किया और प्राप्त सामग्री का विवेचन करते हुए भूमिकाएँ लिखीं। इसके लिए विभाग डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, श्री नंद चतुर्वेदी, श्री विश्वनाथ सचदेव, श्री हरीश भादानी, तथा श्री योगेन्द्र किसलय के प्रति आभार व्यक्त करता है। मुझे विश्वास है, अनुभवी संपादकों द्वारा लिखी गयी ये भूमिकाएँ नये साहित्यकारों के लिए मार्गदर्शन का कार्य करेंगी।

साथ जुड़ने की चेष्टा में
"वह देखिये—सूने चेहरे भावों पे होठों पर मुस्कान लिए
गढ़ या रहा है—एक शिशु
उसके छोटे-छोटे हाथों में है—कुछ तस्वीरें"

ऐसी पंक्तियों के माध्यम से नई पीढ़ी की सम्भावित यात्रा को उन्होंने देखा है किन्तु मुझे कहना चाहिए कि इस कविता में देखी गई यात्रा अनदेखी रह गई है। परिवर्तन के सूत्रों का उनका अनुभव, जहाँ तक इस कविता का प्रश्न है, उनके अन्तर के सलाव में गुम होकर बाहर नहीं आ पाया जबकि अगले ही पृष्ठ पर कमर मेवाड़ी नई दिशा के यात्रियों से प्रश्नमुग्ध होकर भी

"मंजिल पर पहुँचे बिना
क्या पूर्ण होती है यात्रा
आग जब तक भस्म न कर दे
इर्द-गिर्द पसरी जंगल
वह कभी ठंडी नहीं पड़ती
आप मानें चाहे न मानें पर
यह दिन के उजाले की तरह सच है"

बदलाव की बात बहुत भीतर से उलीचने की बात कहते हैं। और यह बदलाव जिसके लिए लाया जाना है, वह तो सदियों से अतृप्त, अभिशप्त और हताश है, वह आम आदमी बोझ धरती पर खड़ा रहा है, वह बदलाव का कर्ता और भोक्ता बने, जरूरी है कि उसे दिवा-स्वप्नों से खींच कर पूछ लिया जाए "किसी सूरज को कभी देखा है?" डॉ. राजानंद आम आदमी के मन में प्रश्न जगाते हुए उसे एक बार और अपनी इयत्ता पहचानने को तत्पर करते हैं ताकि परिवर्तन का पहिया गति पकड़ सके।

इयत्ता की पहचान के इसी यत्न में जनकराज पारीक "अपने आप से झूमते हुए", "एक तेज जिन्दगी जीता है और एक धीमी मौत मरता है" जिन्दगी को अनवरत गतिशील बनाए रख कर मौत को निरा गौण बना देते हैं। इस अनथक-अनवरत चलते प्रयत्नों को 'वह' भले पूरा न समझे और भले ही न भोग पाए परिणामों को पर बाबु आचार्य आश्वस्त हैं कि नई पीढ़ी, जो भी मांझा जा रहा है, उसे पूरी तरह समझेगी और परिणामों को भी जियेगी। बड़े विश्वास के साथ वे कहते हैं "तब एक नया सूरज उगेगा, न हो जो मेरा, मेरे बेटे का होगा, क्या वह मेरा नहीं होगा"। धुंधल के से बाहर आने की लगातार कोशिशें करता आज का

आदमी सांवर दइया के शब्दों में "बुगतू / खुली हवा / रोशनी / और निश्चित स्वर-शब्द की तलाश में" में आगे बढ जाता है। और श्रीनंदन चतुर्वेदी आदमी के विश्वास को अपने स्वरों से सींच देते है—

"मुझे विश्वास इन्सानियत की रश्मियाँ
मेरे प्रयोगों से
उभर कर रंग लाएंगी"

इस तरह के प्रयोग किये ही जाते रहें, त्रिलोक गोयल "जागरण की वेला है" सबको उठाते हैं। "नई भोर नई चिड़ियाँ" को नया गीत देने की बात कहते हैं। "जागरण [बेला" की गुनगुन बलवीरसिंह करुण तक जा पहुँचती है तब वे भी- "जिन्दगी बिखर गई पुस्तक के पन्नों सी", 'उसे ही समेट रहा हूँ"। चूँकि नये सृजन की तैयारी में सबको लगता है, नए सृजन की शुरुआत पर फिर कोई लिप्सा हावी न हो जाए। नारायण कृष्ण अकेला "नहीं सूखी है स्याही" से विनाश की भयावहता की याद दिलाकर टोकते हैं, और हिंसा-प्रेमियों को दुरकराते हैं।

विसंगतियों - विषमताओं के परिणाम - स्वरूप उपजती स्थितियों से झुझना, कभी निराश तो कभी भ्रमित होना तो कभी नई दिशा की तलाश में आगे बढ़ना कौंध कुहासे को यकबयक ही फाड़ देने पर आमादा हो जाना यह सब श्री निशान्त, अशोक पंत और मणि बावरा के शब्दों में व्यक्त हुआ है। इनके शब्द परिपक्व सृजन की सम्भावना का आश्वासन देते हैं।

इस अनुभाग के अन्तिम भागीदार हैं हास्य-व्यंग विख्यात भवानी शंकर व्यास 'विनोद'। कविता सदा मनरंजन नहीं करती, कवि - कर्म के पीछे गहरे सामाजिक दायित्व की भावना भी रहती है। "विनोद" ने हास्य से हट कर विराट समाज की 'विषमता' को ठोस जुबान देना भी कवि-कर्म माना है। अपने विराट से कट कर कोई सृजन कविता कैसे हो?

अनुभाग—2 बड़े कैनवास पर भाषा के खर्चीले उपयोग से बने अनुभाग-1 के बाद क्षणानुभूति की अभिव्यक्तियों के साक्षी बनें, इस सन्दर्भ में अनुभूति को 'क्षण' में न बांधें, भाषा के मितव्ययी उपयोग के नाते ही सही पहली क्षणिका ही छुएं तो भीगी-भीगी सी लगेगी "इस तटपर आकर न शोर करो, प्यार करने वालों की दो पंक्तियाँ पास-पास बैठी हैं"। निजी बात गहरी संवेदना के साथ व्यक्त हुई है जबकि मीठालाल खत्री किसी प्रकार का उक्ति वैचित्र्य भी नहीं निखार सके।

शिक्षक की निरी औपचारिक भूमिका सरला पालीवाल की कथन भंगिमा को टेढ़ा हो जाने को विवश करती है। इसलिए वे डायरी-लेखन को "समय का

मिसबूज" समझती हैं। वे जानती हैं शायरी का अर्थ स्वयं के साथ बाहरी संलग्नता का लेखा-जोखा है, वह बराबर कहाँ बैठ पाता है। चूँकि जोड़ सही नहीं बैठ पाता। इस अहसास गणित के माध्यम से करते हैं देव प्रकाश कौशिक, जिन्हें "अच्छी" और "बुरी" मुद्रा की पहचान हो गई है। गिरधारीसिंह राजावत के लिए प्रगति का अर्थ एक घेरे में घूमना नहीं है। निरंतर ऊर्ध्वमुखी न रह पाने पर वे 'कूपमण्डूकता" पर पिन चुभाने की चेष्टा करते हैं। व्यंग की पिनें चुभती हैं तो जिसे चुभाया जाता है, वह झुरझुराता भी है, पर जब चुभने वाली पिन ही न हो तब वासुदेव चतुर्वेदी की प्रचलित धारणाओं में कही गई क्षणिकाएँ हो जाती हैं मगर चतुर कोठारी "ज़िन्दगी : एक लघुकथा" को लगातार धार देकर कहीं न कहीं चुभ जाने को फेंकते रहते हैं।

छोटी कविताओं में वरनी रॉबर्ट्स का "चेहरा", श्याम त्रिवेदी की "सौगात" अधिक सशक्त हैं। ये छोटी-छोटी कविताएँ अपने बनने वाले आकार का आभास कराती हैं। शेष मिली कविताएँ अपने आकार से भले पर अर्थ से सार्थक नहीं होतीं। ब्रजभूषण भट्ट के शब्द "मज़दूर और निर्माता" के अनुभव से फिसल कर भी मज़दूर की भूमिका की महत्ता पर अपनी भावना को तो कौंधा ही देते हैं। भूपेन्द्र कुमार शहर की सभ्यता के बाजारू रूप से क्षुब्ध हैं।

मैं सोचता हूँ कविता के रूप में "क्षणिका" अथवा भाषा के मितव्ययी उपयोग का अर्थ अजूबा बनाना नहीं है और न कविता को किसी विशेष विधा को आकार देना, क्षणिका तो अनुभव के क्षणांश को सार्थक भाषा की देह देती है। सार्थक भाषा क्षणांश के साथ ही रचनाकार को प्राप्त होना बहुत कठिन बात है।

अनुभाग–3 स्वरानी शब्द पंक्तियों का है। फिर चाहकर गीत हो, अनुगीत हो, गज़ल-मुक्तक हो, स्वराते शब्द छुएँ तो तभी हैं जब आन्दोलित अन्तर से बाहर आए हों। आन्दोलित अन्तर भीतर ही भीतर उफनता हुआ वेगवती नदी-सा बाहर उमड़ आएगा, आड़े-तिरछे और चौड़े-संकरे तट बनाता, भिगोता गुज़र जाएगा। उसे न 'छंद' और न 'बंद' की आवश्यकता है, फिर प्रसंग निजी हो, या उद्बोधन। इन गीतों में "आन्दोलित अन्तर" के और "सवेदित"करने के हल्के-हल्के प्रयास भर हैं। सुरेश पारीक 'दिवाकर' की "अक्षर की उलझन में उलझ गए ऐसे, शब्दों की पीड़ा का हम को ज्ञान नहीं" और जगदीश सुदामा की "दहकते दिन को भेजा है, पतोसी रात बहलूँगा" गीत के बनने की पीड़ा का आभास कराती हैं क्योंकि 'गज़ल' और 'मुक्तक' को यदि जीवित रखा ही जाना है तो 'भाषा' और 'भावना' को बाहर आ रखने से पहले संस्कारित तो करना ही होगा।

"एक दिन यूँ ही तेरी याद में गुज़र गया" (अर्जुन अरविंद)
"कौन जाने प्यास किस किस द्वार तक ले जाय मुझको" (सुरेन्द्र कुमार)
"जीवन ऐसे जिया कि जैसे सुलगा हुआ दमन" (कुन्दन सिंह सजल)
"मजबूरी के हाथ बिक गई अधरों की मुस्कान" (कल्याण गौतम)

जैसी गीत-पंक्तियाँ तो हैं पर ये पंक्तियाँ गीत और नवगीत की अब तक की यात्रा का परिचय नहीं देतीं जबकि हिन्दी गीत विधा कई आयामों में आगे बढ़ी है। 'प्रणय', 'वियोग', 'पीड़ा' और 'विवशता' ने नए और ताज़ा शब्दों में गीत रूप लिया है। उदाहरण के लिए पंक्ति और नाम का संदर्भ दे दूँ तो सम्भव है 'गीत-रचना' की जिज्ञासा दूर-दूर तक जा खोजे—

वातायन-अप्रैल, 64 में (i) झीलों पर शिकनें है सर्द कुहासे की
उड़कर आती है गंध साँस में किस जनवासे की"
(मणि मधुकर)

(ii) "नस-नस का चटखना, भला लगता है
कहीं भी एक क्षण बेकार मत खोना
कि चलना मानकर धरती हमारी है
जहाँ मन हो वहीं पर बीज बोना"
(शलभ श्री रामसिंह)

कल्पना-290 में (iii) "खत से फाइल तक थे खुली पीठ पर नंगे कोड़े
गीले ज़ख्मों वाले हमने पैने रिश्ते जोड़े"
(माहेश्वर तिवारी)

मधुमती-जून 76 में (iv) "बार-बार ओस झरे यादों का क्रम
आहट से जगता है कोरा वहम"
(पूरन शरमा)

इन उदाहरणों की प्रस्तुति का मेरा मतलब है तो सिर्फ इतना ही कि गीत-रचना की एषणा में दीखना है तो यह बहुत कुछ 'तलाशने' की खातिर 'यहाँ-वहाँ'-'कहाँ-कहाँ' व्यापी और इस आने का अर्थ होगा अब तक की गीत-यात्रा को अपने भीतर समो लेना।

इसी अनुपात से सम्बद्ध है उद्बोधन और नमन—वह फिर राष्ट्र को हो, मानस को हो, आज जो भी स्थिति है उसे केवल वर्णन कर ही छोड़ा नहीं जा सकता। किन्हीं को किसी के लिए सम्बोधन तो देना ही होगा। जोरसिंह मृगेन्द्र ने

'शिशक' को सम्बोधित किया है, रमेश कुमार पीम ने माँ की आज्ञानुसार 'दीप' जलाने की बात कही है। अपने आस-पास को 'विराट' के रूप में देखना, उससे जुड़ना और आन्दोलित होना बहुत स्वाभाविक है। बात तब बने जब परिवेश से सराबोर होकर ही बाहर आया जाए ताकि सृजन की नमी हवा के हाथों दूर दूर पहुँचे, बहुत दूर न सही निकटस्थात तो भीग ही जाए।

अनुभाग–4 राजस्थानी–सृजन का है। राजस्थानी में काव्य-सृजन की लम्बी परम्परा रही है। बदल गए परिवेश से कटी अछूती रह कर भी "सोने रा डूंगरां", "पणिहारयां," "नागोरी बैना" में जीवित रही। रेवतदान 'कलित' से 'ढीली ढोल मत लामेड़ा, घाले लासी ढोल रे'; गंगाराम पथिक से "कोलिया आयो रे" जैसे मोड़ आकर ठहर भी गये। ठहराव किसी की नियति नहीं, टूट ही गया। राजस्थानी कविता को निरी नई और कोरी सड़क पर गति देने वाले पहिये बने तेजसिंह जोधा, नंद भारद्वाज, पारस अरोड़ा, साँवर दइया और जोधपुर वो नए राजस्थानी काव्य-सृजन की स्थायी छावनी बना हुआ है। "डूंगर–आसरा रा" राजस्थानी कविता के विस्तार की बड़ी तस्वीर न सही, झलक तो प्रस्तुत करता ही है-

"खुद री ताकत नैं ग्रोलख तू बदल् सकै लेख री लकीरां"

(साँवर दइया)

"म्हे कागज बांच्योड़ा है, म्हानै इयांहीज पढ्या रैवणद्यो"

(रामनिवास शर्मा)

"मोठ हुया मद काचरा वण्या मतीरा भोग
साँवण-भादो पांगर्‌या मिल्या घणे रा जोग"

(विश्वम्भर प्रसाद शर्मा)

जैसे भिन्नरंगी 'चितराम' सामने हैं। "वीर विरदावली" जैसी बात तो थाती के रूप में अभी भी संजोये जा रही है। याद भर के लिए तो ठीक है पर अब इस पुनरार्थ किया जा सके, आज के सन्दर्भो से जोड़ा जा सके तो 'विरदावली' का खे नई फसल दे देगा।

राजस्थानी अनुभाग के आखिरी कवि हैं-शिवराज छगाणी और अचलसिं राजावत। दो समानान्तर बिन्दु मगर बहुत निकट होकर 'सृजन' से जुड़े रहने वा दो कवि छंगाणी नये होकर भी ठेठ आंचलिकता से जुड़ने के यत्न में हैं जबकि अचलसिंह के पीछे राजस्थानी काव्य सृजन की सम्पन्न परम्परा है। वे अप आज के रंग की पोशाक पहनाते हैं ताकि वह ताजा लगे।

एक पहल : सम्पादक के नाम

'कविता' की अपनी समझ की आँख से जैसा देख सका, सामने रख दिया है। मैं भी 'सृजन' से जुड़े रहने के यत्न में लगा रहता हूँ यही कारण है कि 'रचना' के बहाने 'रचना' कर्मी से बात का अवसर ले ही लेता हूँ। सम्भव है, कभी 'रूबरू' हो जाएँ और 'सृजन' पर सार्थक संवाद हो जाए।

मेरे लिए कविता न मन रंजन है और न हॉबी। किसी जलसे में शरीक होने की जल्दी में कपड़ों की तरह 'कवि-कर्म' पहनना भी अच्छा नहीं लगता। कविता का मेरा बाहरी स्वरूप कितना सार्थक रहा है, यह तो पाठकों, विद्वान - आलोचकों का विषय है। यहाँ तो मैं कविता के प्रति लगाव और कर्म - धारण की बात करने बैठा हूँ।

कविता विषय, घटना और व्यक्ति विशेष पर लिखी जा सकती है बशर्ते रचना-कर्मी किसी से अभिभूत हो और व्यक्त करने की छटपटाहट को अपने भीतर न रख पाये। यह अकुलाहट ही अनुभव का पकाव है, व्यक्त होने की तीव्रता है। यह तो रचना कर्मी को देखना है कि उसकी रचनाओं में 'अनुभव का पकाव' और व्यक्त होने की तीव्रता किस 'आकार' और किस 'गति' से आई है अथवा ऊर्ध्वमुख हो रही है।

पुस्तक में संयोजित सारी रचनाएँ किसी मानदण्ड का प्रतिनिधित्व करती हैं, ऐसा नहीं है, सिद्ध रचना कर्मियों के साथ नई सृजन सम्भावनाएँ प्रस्तुत करने का उद्देश्य 'विकास' का प्रयत्न ही है। अनेक रचनाओं में लिख लिए जाने की जल्दबाजी है, अनेकों में कोरा भावावेश है, कहीं-कही तो रोजमर्रा की बात या सिर्फ अखबारीपन का 'लेखन' है, जो छूट गया है :

(i) " जुल्म को शान्त करने 1869 को बादल बरसा"

(ii) " मानव की मानवता अधिकार जीवित रहती है।
अधिकार से कोमल रहता है नारी का मन
अधिकार से दृढ़ रहता है पाषाण का तन"

(iii) " खरच सभी सरकारी कम हुआ, कीमत सभी गिराई
उत्पादन मे वृद्धि कर कर ऊँचा सब उठ आई"

(iv) " जहाँ नारी की पूजा होती है, देवता निवास यहाँ करते हैं।
इज्जत नारी की करके ही हम सुखी रह सकते हैं।।"

(v) " आपात स्थिति के बाद प्रस्फुटित अनुशासन एवं अनुकूल वातावरण को—बनाये रखने के लिये कर्तव्यपरायणता तथा कार्यकुशलता.........."

(vi) " शिक्षक दिवस जिन्दाबाद, पाँच तारीख हर महीने आती है"

'शिक्षक' को सम्बोधित किया है, रमेश कुमार घोल ने माँ की आज्ञानुसार 'दीप' जलाने की बात कही है। अपने आस-पास को 'विराट' के रूप में देखना, उससे जुड़ना और आन्दोलित होना बहुत स्वाभाविक है। बात तब बने जब परिवेश से सराबोर होकर ही बाहर आया जाए ताकि सृजन की नमी हवा के हाथों दूर दूर पहुँचे, बहुत दूर न सही निकट-पास तो भीग ही जाए।

अनुभाग-4 राजस्थानी-सृजन का है। राजस्थानी में काव्य-सृजन की लम्बी परम्परा रही है। बदल गए परिवेश से बर्षों अछूती रह कर भी "सोने रा डूंगरां", "पणिहारयां," "नागोरी बैला" में जीवित रही। रेवतदान 'कल्पित' से 'खीली खोल मत खामेड़ा, वारो खाली बोल रे', गंगाराम पथिक से "कौलिया आयो रे" जैसे मोड़ आकर ठहर भी गये। ठहराव किसी की नियति नहीं, टूट ही गया। राजस्थानी कविता को निरी नई और कोरी सड़क पर गति देने वाले पहिये बने तेजसिंह जोधा, नद भारद्वाज, पारस अरोड़ा, सांवर दइया और जोधपुर तो नए राजस्थानी काव्य-सृजन की स्थायी छावनी बना हुआ है। "डूंगर-आखरां रा" राजस्थानी कविता के विस्तार की बड़ी तस्वीर न सही, झलक तो प्रस्तुत करता ही है-

"खुद री ताकत नैं ओळख तू बदल सकै लेख री लकीरां"

(सांवर दइया)

"घे कागज बांच्योड़ा है, थांनै इयांहीज पड़्या रैवणद्यो"

(रामनिवास शर्मा)

"मोठ हुया मद कायरा बणाया मतीरा भोग
सांवण-भादो पांगर्‌या मिल्या पले रा जोग"

(विश्वम्भर प्रसाद शर्मा)

वैसे मिश्रणो 'बिठराम' सामने है। "वीर विरदावली" जैसी बात तो थाती के रूप में अभी भी संजोये जा रही है। याद भर के लिए तो ठीक है पर अब इसका पुनरार्थ किया जा सके, आज के सन्दर्भों से जोड़ा जा सके तो 'विरदावली' का सेन नई पहचान दे देगा।

राजस्थानी अनुभाग के आखिरी कवि हैं- शिवराज छंगाणी और अचलसिंह राजावत। दो समानान्तर बिन्दु मगर बहुत निकट होकर 'सृजन' से जुड़े रहने वाले दो कवि छंगाणी नये होकर भी ठेठ मौलिकता से जुड़ने के यत्न में हैं जबकि अचलसिंह के पीछे राजस्थानी काव्य सृजन की सम्पन्न परम्परा है। वे अपने भाव के रंग की पोशाक पहनाते हैं ताकि वह ताजा लगे।

एक पहल : सम्पादक के नाम

'कविता' को अपनी समझ की आँख से जैसा देख सका, सामने रख दिया है। मैं भी 'सृजन' से जुड़े रहने के यत्न में लगा रहता हूँ यही कारण है कि 'रचना' के बहाने 'रचना' कर्मी से बात का अवसर ले ही लेता हूँ। सम्भव है, कभी 'प्ररूमरू' हो जाएँ और 'सृजन' पर सार्थक संवाद हो जाए।

मेरे लिए कविता न मन रंजन है और न हॉबी। किसी जलसे में शरीक होने की जल्दी में कपड़ों की तरह 'कवि-कर्म' पहनना भी अच्छा नहीं लगता। कविता का मेरा बाहरी स्वरूप कितना सार्थक रहा है, यह तो पाठकों, विद्वान - आलोचकों का विषय है। यहाँ तो मैं कविता के प्रति लगाव और कर्म - धारण की बात करने बैठा हूँ।

कविता विषय, घटना और व्यक्ति विशेष पर लिखी जा सकती है बशर्ते रचना-कर्मी किसी से अभिभूत हो और व्यक्त करने की छटपटाहट को अपने भीतर न रख पाये। यह अकुलाहट ही अनुभव का पकाव है, व्यक्त होने की तीव्रता है। यह तो रचना कर्मी को देखना है कि उसकी रचनाओं में 'अनुभव का पकाव' और व्यक्त होने की तीव्रता किस 'आकार' और किस 'गति' से आई है अथवा ऊर्ध्वमुख हो रही है।

पुस्तक मे संयोजित सारी रचनाएँ किसी मानदण्ड का प्रतिनिधित्व करती हैं, ऐसा नहीं है, सिद्ध रचना कर्मियों के साथ नई सृजन सम्भावनाएँ प्रस्तुत करने का उद्देश्य 'विकास' का प्रयत्न ही है। अनेक रचनाओं में लिख लिए जाने की जल्दबाजी है, अनेकों में कोरा भावावेश है, कहीं-कहीं तो रोजमर्रा की बात या सिर्फ अखबारीपन का 'लेखन' है, जो छूट गया है :

(i) " जुल्म को शान्त करने 1869 को बादल बरसा"

(ii) " मानव की मानवता अधिकार जीवित रहती है।
अधिकार से कोमल रहता है नारी का मन
अधिकार से दृढ़ रहता है पाषाण का तन"

(iii) " खर्च सभी सरकारी कम हुआ, कीमत सभी गिराई
उत्पादन में वृद्धि कर कर ऊँचा सब उठ आई"

(iv) " जहाँ नारी की पूजा होती है, देवता निवास वहाँ करते हैं।
इज्जत नारी की करके ही हम सुखी रह सकते हैं।।"

(v) " आपात स्थिति के बाद प्रस्फुटित अनुशासन एवं अनुकूल वातावरण को—बनाये रखने के लिये कर्तव्यपरायणता तथा कार्यकुशलता..........."

(vi) " शिक्षक दिवस जिन्दाबाद, पाँच तारीख हर महीने आती है"

ऊपर की पंक्तियां में मेरे साथ आप भी हो जाएँ तो भी कविता खोज पा कठिन होगा । "पीढ़ियाँ बनाने का शिशा धर्म या बीमार को स्वस्थ करने चिकित्सा धर्म जल्दी में कपड़े पहनना अथवा नाम ओढ़ना नहीं है तब फिर कविता सृजन के साथ ऐसा क्यों ? कविता के लिए कोई फ्रेम निर्धारित नहीं है, छंद गैर जरूरी है पर आन्तरिक चुनाव किसी किसी रूप में लय भी कहने जरूरी हमारे शरीर में भी लय संचालित है, सम प्रकृति में भी है, भंझावात में अपनी लय होती है, फिर कविता में लय क्यों न हो । भाषा मात्र हथियार है–उपकरण है कविता, इसको ही सही नहीं 'चलाया' गया तो सृ कैसा ? 'रचना' जिसके लिए गम्भीर दायित्व है, जिसकी अनिवार्यता है, वह हमेशा सार्थक भाषा के लिए अपने आप से और अपने परिवेश से लड़ता है । कवि से भाषा बेहिसाब खर्च, बहुत विनय के साथ कहना चाहता हूँ, मेरी समझ बाहर है ।

कुछ अपवादों को छोड़कर, मेरे सामने के हजार-बारह सौ पृष्ठों में हिं कविता की तीन दशकों की यात्रा, दूरी और जमीन नहीं दिखी, यह चिन्तनीय है रचनाकार जो भी व्यक्त करता है, अपने बाहर से लेता है, उससे अनुप्राणित हो है, रसमसता है, दहकता है, चिंतन की पर्त पर पर्त उघारता है, और छटपटाहट फूट जाने की सीमा तक आ जाने पर ही व्यक्त करता है । इस तरह का अनवर कम ही निराला, महादेवी, अज्ञेय, मुक्ति-बोध से बनता हुआ तलपट सर्वेश्व विजेन्द्र, धूमिल और जगूड़ी होकर आगे और आगे बढ़ता रहता है । आस-पास धूप, पानी और खुली हवा नहीं खाई जाएगी तो 'भीतर' का निरा निजी अन्तर क तक और कितना दे पाएगा । संवेदन को ज्ञान धरती और ज्ञान को संवेदन पाँखें देने के लिए रचना-कर्मी को हिन्दी हो अथवा उर्दू-राजस्थानी भी सृजन यात्राओं का साक्षी ही नहीं, भागीदार बनना पड़ेगा ।

इन शब्दों के साथ मैं आशा करता हूँ कि शिक्षक दिवस पर प्रकाशित आकार से जुड़े रचना-कर्मी सम्पादक की पहल के रूप में प्रेषित आमंत्रण को स और सार्थक संवाद के लिए स्वीकारेंगे । 'अल्पज्ञ' होने का कभी अवसर आ जा पर कम से कम मुझे तो साथ लेते ही देंगे । संवाद के जरिये जहाँ हम 'सृजन' धारणाओं और अनिवार्यताओं को एक दूसरे को समझ के रिश्ते का आकार सकेंगे, वहीं हम व्यक्ति से समाज और सम्पूर्ण विराट को बदलने या फिर अप समय के अनुकूल रंग भी दे सकेंगे । अस्तु ।

– हरीश भादानी

अनुक्रम

हिन्दी

अनुभाग-२

अक्षरों के ओस बिन्दु

अनुभाग–३

शब्दों की सप्त-पदी

अनुभाग–१

कविताएँ

आकाश अक्षरों का

⊖ भागीरथ भार्गव ⊖ कमर मेवाड़ी ⊖ डा. राजानन्द ⊖ जनकराज पारीक ⊖ बामु आचार्य ⊖ श्रीनंदन चतुर्वेदी ⊖ सांवर दइया ⊖ त्रिलोक गोयल ⊖ मो. सदीक ⊖ बलवीर सिंह 'करुण' ⊖ ओम केवलिया ⊖ मनमोहन झा ⊖ महावीर जोशी ⊖ नारायणकृष्ण 'अकेला' ⊖ अशोक पत ⊖ नंदकिशोर शर्मा 'स्नेही' ⊖ वीणा गुप्ता ⊖ भंवरसिंह सहवाल "व्याघ्रपंजा" ⊖ महेशचंद्र वर्मा ⊖ मगरचंद्र दवे ⊖ चैनराम शर्मा ⊖ ब्रजेशचंद्र पारीक ⊖ पुरुषोत्तम 'पल्लव' ⊖ निशान्त ⊖ देवेन्द्रसिंह पुण्डीर ⊖ अब्दुल मलिक खान ⊖ मणि बावरा ⊖ गोपालसिंह अग्रवाल ⊖ दिनेश विजय-वर्गीय ⊖ काशीलाल शर्मा ⊖ किसनलाल पारीक ⊖ दीनदयालपुरी गोस्वामी ⊖ प्रेम शेखावत "पंछी" ⊖ रविशंकर भट्ट ⊖ कु. कृष्णा गोस्वामी ⊖ शान्तिलाल वैष्णव ⊖ सत्यप्रभा गोस्वामी ⊖ भवानीशंकर व्यास "विनोद"

भागीरथ भार्गव

अनुशासन पर्व

लो अब वह आ ही गया ह
वह देखिए—
सूखे चेहरे व पपड़ाने होठों पर
मुस्कान लिये वह आ रहा है—एक शिशु
उसके छोटे-छोटे हाथों में हैं—कुछ तख्तियां

उसके स्वागत में
गांवों और नगरों में बन गये हैं—स्वागत द्वार
गांव का हरखू चमार, किसना किसान
वंश परम्परागत कर्ज के जुए को उतार
धुंधलाये सपनों के मटमैलेपन को
स्वच्छ बनाने में जुटे हैं
उनके लिए खुलने लगे हैं—बन्द द्वार।

-

इधर कारखाने की पारी पूरी कर
दीपा लौट रहा है
नयी सुबह के गीत की कड़ियों को गुनगुनाता
वह जाग गया है—उसका श्रम
निर्माण करने जा रहा है—एक नया भारत।

इस चौमंजिली इमारत में
झड़ने लगी है फाइलों की धूल
खुलने लगे बन्द फीते।
स्कूलों में—बच्चे समवेत स्वर में
दुहराने लगे हैं—नयी प्रतिज्ञाएँ।

आपने सुना—उपेक्षित वर्गों के लिए
आगये हैं नये आर्थिक कार्यक्रम
ट्रेन व बस के चलने व रुकने पर
लोग मिलाने लगे हैं—अपनी घड़ियाँ।

कुछ लोगों के लिए सूना हो गया है अखबार
चोरी, डकैती, बलात्कार का धीमा हो गया है बाजार
अनाज, वनस्पति व मिट्टी का तेल
मिल रहा है खुले बाजार।

तस्करी ने करली है—आत्म हत्या
उसके प्रेमियों पर छा गया है—पगलापन
उनका आकाश, उनके लिए बहुत काला हो गया है।

वह देखिए—
कितना निकट आ गया है दौड़ता वह शिशु
पढ़िएगा—उसकी एक तख्ती पर
साफ लिखा है—"अनुशासन पर्व"

□

क़मर मेवाड़ी

आग

यह सच है
आग जब धधकती है—तब वह
जंगलों पर दया नहीं करती
बल्कि वह निर्दयी हो जाती है
निर्भय भी।

•

उसी तरह
जिस तरह
वेगवान बहता हुआ जल
बेफिक्री से बढ़ता रहता है
आगे की ओर।

*

जगलों को काट कर
यह सोच लेना
कि सदा के लिए, ठण्डा कर
दिया गया है, आग को
निरी मूर्खता है ।

*

एक प्रश्न करूं
मंजिल पर पहुँचे बिना
क्या पूर्ण होती है यात्रा
आग जब तक भस्म न कर दे
ईर्द-गिर्द का वहशी जंगल
यह कभी ठण्डी नहीं पड़ती
आप मानें चाहे न मानें
पर यह दिन के उजाले की तरह सच है ।

□

वह :

चट्टानी घाटी में
दूर तक अपनी आवाज को फेंकता हुआ
वह खड़ा है—अकेला।
आवाजों का हुजूम टकरा-टकरा कर
हताश करता है।
राह की तलाश में वह निकलते सूरज के
साथ चला था–बीत गया।
एक पूरा-का-पूरा आंखों का सतरंगी शीश
धुंधला गया;
वह खो गया किसी अनन्त खोह के अंधेरे
आंधी भी नहीं चली,
बरफ़ भी नहीं गिरी,
बारिश भी नहीं हुई, न सोते फूटे,

फिर भी उसने पाया कि वह कीचड़ में
गर्दन तक फँस गया है ।
वक्त वाला वह दाँतोंदार चक्र
लौट रहा है पीछे,
कटने लगे हैं केलों के तने,
छिनने लगा है वह,
वह एक आदमी-ही तो है
जो न सत्ता की पीठिका पा सका
न कुवेर की ताली;
(आम आदमी की नियति इससे ज्यादा
रही भी कब है ?)
चट्टानी घाटी की
बांझ धरती पर खड़ा है
लूले आदमियों का एक मुर्दा गाँव
उसे दिवास्वप्न में दीखता है,
वह चीख कर पूछना चाहता है
तुम सब कौन हो ?
और मैं कौन हूँ ?
खाली नालियों से
खुद की आवाज़
दूसरों की आवाज़ बनकर निकल जाती है ।
अतृप्त, अभिशप्त, निशस्त्र, हताश वह
अपनी उस इयत्ता को खोजता है
जो पहले थी,
और अब खामोश कर दी गई है ।
न गति है, न गंतव्य,
न राह है न कोई दिपदिपाता सितारा ।
वह खड़ा है,
वह खड़ा है,
वह सोच रहा है
क्या उसने किसी सूरज को कभी देखा था ?

□

जनकराज पारीक

अपने आप से जूझते हुए

देखते ही देखते
अंधेरे की पर्तें उसकी दृष्टि में जम गई
और उसका सारा संसार
तवे सा काला हो गया !
वह नहीं जानता था
कि वह इतनी जल्दी अन्तर्मुखी हो ज
कि उसके अहसास का सर्पीला आकार
उसी के भीतर कुण्डली खोलकर सो
कि उसका तीखा-तुर्श अहम्
अभावों की अन्ध-कन्दरा में खो जाए
कि अपने आपसे जूझने का अभ्यासी
नहीं जानता था
कि इतनी जल्दी सब इस तरह हो जा

क्या तुमने उसका मरना देखा है ?
क्या तुमने उसका जीना देखा है ?
काश, तुम देखते
उसकी आँखों में जमता प्रगाढ़ अन्धकार
एक क्षत-विक्षप्त पशु सा दहाड़ता पागल आवेश
एक बर्बर फुत्कार
और छिपकली की कटी पूँछ सा
निष्कंप होता हुआ
उसका पिशाच आक्रोश ।
उफ़ !
कितना लाचार है वह शख्स
जो अपने आप से लड़ता है,
अपने आप से डरता है,
एक तेज जिन्दगी जीता है
और एक धीमी मौत मरता है !

□

नया सूरज

राहों पर मन्डते हैं
अभी भी
आड़े तिरछे पाँव

सुबह और शाम,

समझदार लोग
मुँह से नहीं
भंगिमाओं से
बोलते हैं

और
ज्यों ज्यों
समय गुजरता जायेगा

श्रीनारायण चतुर्वेदी

प्रतिक्रिया

शब्द एटम बम तुम्हारे
कर गये हैं भूमिगत विस्फोट
अनुभव हो रहा,
मन पर हुआ है क्रूर उल्कापात
अंतर की दरारों को-
अधर की मुस्कराहट में-
छिपाये फिर रहा हूँ
रेडियोधर्मी तभी से बन गई है साँस
मुझ से दूर ही रहना-
स्मरण हो-
हाथ में प्लूटोनियम कब से लिये हूँ
और मैं भी-
आणविक विस्फोट निश्चय ही करूंगा

सांवर दइया

निरन्तर लगा हूँ...

बताया गया मुझे
कि ऊपर से नीचे तक
सिर्फ सडांध ही सडांध है
खुशबू की तलाश में
मैं व्यर्थ क्यों भटक रहा।
दिखाया गया मुझे
कि इस छोर से उस छोर तक
सिर्फ धुग्रां ग्रौर ग्रंधेरा है
खुली हवा ग्रौर रोशनी के
मैं व्यर्थ क्यों छटपटा रहा
सुनाया गया मुझे
कि यहाँ से वहाँ तक
सिर्फ शोर ही शोर है

किन्तु उसमें-
ऊर्जा होगी सहज अनुराग की—
निष्कपट मनसा आदमीयत की
मुझे विश्वास है—
इन्सानियत की रश्मियाँ
मेरे प्रयोगों से
उभर कर रंग लायेंगी
मगर—
ये शब्द एटम बम तुम्हारे—
इस समय तो
कर गये हैं भूमिगत विस्फोट ।

सांवर दइया

निरन्तर लगा हूँ....

बताया गया मुझे
कि ऊपर से नीचे तक
सिर्फ़ सड़ांध ही सड़ांध है
        खुशबू की तलाश में
        मैं व्यर्थ क्यों भटक रहा हूँ —
दिखाया गया मुझे
कि इस छोर से उस छोर तक
सिर्फ़ धुआं और अंधेरा है
        खुली हवा और रोशनी के लिए
        मैं व्यर्थ क्यों छटपटा रहा हूँ —
सुनाया गया मुझे
कि यहाँ से वहाँ तक
सिर्फ़ शोर ही शोर है

किसी निश्चित स्वर-शब्द की तलाश में
मैं इसमें क्यों गलत हो रहा हूँ
उन्होंने तो साफ समझाया
और आज भी समझा रहे हैं
लेकिन है शायद मेरी ही बुद्धि कमजोर
कि मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ—
(जो कुछ वे समझाना चाहते हैं।)
और निरन्तर लगा हूँ
खुशबू
खुली हवा
रोशनी
और निश्चित स्वर-शब्द को

नई चिड़ियों को नये गीत गाने दो

गीतों की सोन चिरैया के
चितकबरे पंखों पर
किरणों की सतरंगी परियाँ उतरी हैं ।
बर्फीली पर्वत के गिर्जे में
पादरी सूरज
रुपहला गाउन पहन आया है ॥
गगन की कबूतरी कान्वेन्ट बस में
नीलम की ड्रेस पहन
बैठी हैं बादलों की सलोनी छात्राएँ
गुलाबी रिबन बाँध ।
अन्तरिक्ष के राजपथ से
रंगीन सवेरा उतरा है ।
पारे सा बिखरा है ॥
आओ मिल गाओ गीत
ऊषा के नए गीत ।

भुला दो।
अंधेरे की काली गुरमा को भुला दो
उनके तारे से सीने दाँतों पर
अब धूमिल नकाब पड़ा है
वह श्मशान सा सन्नाटा बड़ी मुश्किल से सोया है।
भावों का भोला शिशु रात भर रोया है॥
मुझे याद न दिलाओ
वह चाँद का बीमार जर्द चेहरा मुझे अच्छा नहीं लगता।
उस दीपक की टिम टिमाती कृपण रौशनी में
मेरा दम घुटता है।
दीवारों पर बनती बिगड़ती भूतों सी छाया पर
सफेदी की कूंची पर कूंची फेरी है मेरे चितेरे ने।

बन्द करो।
ये 'रासों के मारू बाजे और चारणी कविताएँ बन्द करो
मेरे कानों के पर्दे फटे जाते हैं।
ये बाँसुरी का बेसुरा बाँस अब और न बजाओ
तुम्हारे राधा कृष्ण के रास में
सिनेमा के नायक नायिकाओं सी नंगी तस्वीरें [illegible] हैं।
मेरी संस्कृति लजाती है॥
सुनो! ये बिगुल बजा
अपनी पुरानी ढपली को फोड़ दो।
ये सरकण्डे की कलमें तोड़ दो॥
अब पेन का युग है।
आज नए साज हैं-अपना ही राज है
नए उपमानों के मेहमान आए हैं।
नए छन्दों के नए शब्दों के उपहार लाए हैं॥
उठो! उनका स्वागत करो
उनकी जय बोलो
जागरण की बेला है
नई भोर में, नई चिड़ियों को, नए गीत गाने दो

□

कविता (हिन्दी)

बस ! दो अलग-अलग
धमाके हुए—
आज भी हुए—कल फिर होंगे -
मैंने तो सुने हैं—
आपने भी तो सुने होंगे !
क्या हुआ धमाकों का रिजल्ट ?
पहले धमाके में एक ने एक मारा
होगा-कोई पुश्तैनी बैर
दफा तीनसौ दो के तहत्
शायद आजन्म कारावास मिले
दूसरे धमाके में—एक ने अनेक
कत्ल किये—फिर भी—

बलबीरसिंह 'करुण'

जिन्दगी बिखर गई है

"इस सूनी पगडंडी पर
इतनी रात गये
क्या ढूँढ रहे हो भाई ?
इधर-उधर दौड़ से क्यों रहे हो
क्या किसी पुस्तक के पन्ने बिखर गये हैं ?"

"नहीं तो मित्र,
पुस्तक ?
वह हमारे भाग्य में कहाँ,
वह तो पंडितों के पढ़ने की चीज है
हम गँवार
तौर-तरीकों से नावाकिफ
भला हम पुस्तक कहाँ से लावें ?"

"तो फिर
कोई माला टूट गई है क्या,
मोती बीन रहे हो शायद ?"

"अरे भैया !
जाओ
व्यंग्य न कसो
ताने न मारो
हम और माला ?
यह कैसा मेल ?
वह बेशकीमती होती है
हम गरीब हैं
बदकिस्मत हैं
उसे तो भाग्यवाले पहनते हैं।"

"तो आखिर
है क्या बात ?
तुम
कुछ न कुछ ढूंढ़ जरूर रहे हो।"

"तो लो बताता हूँ भाई मेरे,
चला आ रहा था
अँधेरा बढ़ चला
बूढ़ा तो था ही
ठोकर लग गई
जिन्दगी बिखर गई
उसे ही समेट रहा हूँ।
धूल में मिल गई
किरकिरी हो गई
और बेस्वाद भी,
फिर भी कोशिश कर रहा हूँ
जितनी समेट सकूँगा
समेटूँगा।

हाँ-हाँ
सचमुच भाई
जिन्दगी बिखर गई है,
पुस्तक के पन्नों सी
माला के दानों सी
दर्पण के टुकड़ों सी
और सच पूछो तो पारे सी
([illegible] नहीं)

ग्रोम केवलिया

दोस्त के नाम

मेरे दोस्त
धारणा ग्रौर मान्यताएँ
ग्रब तो बदलती जा रही हैं।
हर डगर की मोड़ पर
मुँह खोल कर
बैठे हैं इन्सानी दरिन्दे
कौन ग्रपना साथ दे
जब जेब गरमाई न होगी
झूठे सभी रिश्ते या नाते
दूर के या पास के
रह गई बातें ही बातें।
ठंठते उस पेड़ के नीचे सभी हैं

जब तलक देता वह छाया-
कौन किस का साथ देता
—जिन्दगी तो अब चढ़ाई पर
लुढकती जा रही है
धारणा और मान्यताएँ
अब तो बदलती आ रही हैं ।

मनोहर झा

निराकार के लिए : निराकार के प्रति

झूठे विज्ञापनों और नकली आवरणों की
इस दुनिया में
हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्व का
कोई आकार
कोई रूप
कोई रंग नहीं होता
और नहीं होती है
गंध !

आओ ! हम सब
इसके लिए
ईश्वर को धन्यवाद दें
वरना
नकली भगवानों का

असली शैतानों का ...और
ढोंगी इन्सानों का क्या होता ?
बहुत बौने/बहुत भद्दे दिखते हम !
मसलन
हमारे उसूलों और इरादों में
हमारी वृत्तियों और नीतियों में
यदि कोई गंध ही होती....तो
दूर-दूर तक भभक कर फैल जाती
सड़े मुरदों सरीखी असह्य सड़ाँध !
कितना दूभर हो जाता
आदमियों की बस्तियों मे
जानवरों का रहना ?
या मानलो
सेक्स-लस्ट मे ही
गहरा लाल रंग होता....तो
कितना शर्मनाक हो जाता
दिन के उजालो मे
एक दूसरे को चेहरा दिखाना
या/एक दूसरे से चेहरा छिपाना ?
या मान लो
हमारे अन्तस मे व्याप्त
स्वार्थ/या/घृणा/या/ईर्ष्या से
अग्नि किरणें ही निकलती .. तो
आदमी अपने ही भीतर
दहकते अंगारों से
जल कर राख हो जाता....और
इधर/उधर
यहाँ/वहाँ
हर ओर

भभक कर फैल जाता
भयावह अग्नि काण्ड !

आओ ! एक बार फिर
हम सब इसके लिए ईश्वर को
धन्यवाद दें/कि उसने
हमारे आध्यात्मिक व्यक्तित्व को
कोई आकार नहीं दिया
नहीं दिये
रूप
रंग
और
गंध
वरना
कितने बौने
कितने भद्दे
कितने दुर्गन्धित
लगते हम !!

□

महावीर 'जोशी'

एक तमाशा मरने का !

तुम !
जो यह तमाशा करते हो —
मरने का
इसे मैंने कई बार देखा है
पर कोई खास बात नजर नहीं आई
बस एक ही खूबी है
कि तुम
कई तरह से मरते हो ।
कभी गर्मी से—कभी सर्दी से
कभी भूख से—कभी प्यास से
कभी कभी तो
अकारण ही मर जाते हो

किसी डोरी के सहारे
केवल यह लिख कर
छोटे से पुर्जे पर
—मैं तंग आ गया हूँ
इस जीवन से—
तारीफ़ तो यही है कि
ज़हर और गोलियों से
मर सकता है कोई भी
पर तुम ! तुम तो
दवाइयाँ खा कर भी मरते हो

भर जाता है मन
कड़ुवाहट से
उठती है बड़ी खीज
जब तुम बे वक्त मरते हो ।
उस दिन
जब मैं अपनी स्टेनो के साथ
तुम्हें देख रहा था
(और जब वह
अपनी गोलाइयों पर रखे
मेरे हाथ से खेल रही थी)

तो तुम !
अचानक मर गये चीख मार कर
और उस चीख के साथ ही
वह भी चीख पड़ी
—बड़ा मातम फैलाया है तुमने
सारा मजा
किर किरा कर दिया [illegible] ने—

श्रौर कल !
जब तुम सर्दी से
ग्रकड़ कर मर रहे थे
तो मेरी छोटी बेबी
बोल पड़ी थी—
पापा, जब इसे ठंड लग रही है
तो यह कपड़े क्यों नहीं पहनता !

□

नारायण कृष्ण 'अकेला'

नहीं सूखी है स्याही

देखते देखते धुंधला हो गया दर्पण
इतिहास के चमकीले पृष्ठों पर
घुल गई कालिख
विकृत हो गए रंग
कर्कश हो गई ध्वनियां
धरती की पीठ पर चल पड़ी गोलियां
[illegible] का पानी देखता रहा—
[illegible] में उठने लगा धुंआ
[illegible] में धंसने लगा बारूद
[illegible] गया इन्द्रधनुष
[illegible] भूल गए
मेमनों की टोलियां

भागने लगी जंगलों की ओर,
अन्दर ही अन्दर हलचल थी
फिजाओं में सरसराहट
और दरख्तों के पत्तों में
खलबलाहट थी।
फिर एक गोली
मेरे पांव के पास से गुजरी
भाई मेरे तुम शहीद हो गए।
एक मौन जलूस सड़कों पर गुजरा है
सारा का सारा आकाश
दो चार फूलों में सिमट आया है।
मेरी आंखों के सामने
चार चेहरे अपनी आठ आंखों से
कुछ कहना चाहते हैं—
उनका छलनी शरीर, बेबस हाथ
तने हुए मस्तक, लहूलुहान पांव
पूछते हैं मुझ से—'क्या जिन्दा है मानवता ?
ये साजिश किसकी है
किसकी है ये लाश
सलीब पर टँगी हुई
अभी खून में खौलता हुआ तूफान है
अभी जिन्दा हैं कुंती के पुत्र
जटायु के पक्षधर
अभी जिन्दा हैं होली के रंग
दीपावली के दिये
फिर क्यों चमकता है लहू
संगीन की नोकों पर
क्यों नोचा जाता है पैगम्बर
बर्छियों से
खंदकों में क्यों है हलचल
क्यों छा गया है आकाश पर अंधेरा
अभी नहीं सूखी है कलम की स्याही

सन्नाटों में मत बरसाओ बारूद के गोले
मत पहनाओ मुखौटों को खूंखार चेहरे
दूषित मत करो मेरा मोर पंख
सूए की चोंच को गाने दो
मत छीनो मल्लाहों का जाल।
युद्ध नहीं है इन्सानियत का चोला
नहीं है अत्याचार मजहब का आवरण
नहीं है बर्बरता संस्कृति का परिवेश
फिर क्यों लगाते हो कब्रिस्तानों की होड़
क्यों दबोचते हो बिरखों के बचपन
क्यों उठाते हो विनाश के टीले
क्यों पहनते हो आडम्बरों के प्रस्ताव।

□

अशोक पंत

प्रतीक्षा

गहराया भ्रम
तुम्हारे अहसास मे
एक और जिन्दगी
बन गई प्रस्तर
बदले सन्दर्भों में ?

यह बेमानी भीड
यह उजडी बस्ती
दम तोड़ता सन्नाटा
पथराई अंतियों में
समुद्र की भयावहता
भर गई
एक और विसंगति
आकांक्षाओं के घेरे मे ?

नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'

भोर की किरण

चौराहे पर
चाँदी की चाँदनी
जमी रही रात भर—
अनजान बन !
सब ओर बिखरे
कृत्रिम प्रकाश में,
अँधेरा छिपा-दबा—
कराहता रहा,
भीड़ के अभाव में—
दर्द अनसुना बना रहा,
धरती के नासूर
झरोखों से

वीणा गुप्ता

प्रयत्न

जहां जाओ
जिधर जाओ
सैकड़ों-हजारों प्रश्न
घेरा डाले रहते हैं
हमारे चारों ओर
और हम यदि कभी
हल खोजने का
प्रयत्न भर भी करते हैं
तो केवल इतना
जुलूस निकालते हैं
नारे उछालते हैं
प्रतीक्षा करते हैं
और यदि कभी

भँवरसिंह सहवाल 'व्याघ्रपंजा'

मेडीकल जाँच

बीमार आस्थाओं की मेडीकल जाँच का परिणाम
अभी नहीं आया
कल की दुर्घटना में मृत
विचारों का पोस्टमार्टम अभी बाकी है
तुम इस भरी गर्मी की दोपहरी में
अस्पताल के कोरिडॉर में
यों कब तक खड़े रहोगे
घर क्यों नहीं चले जाते
मर्फिया के इन्जेक्शन में
सारा आसमान ही तो घुल गया है
तुम नींद की गोलियां क्यों नहीं खा लेते

महेशचन्द्र वर्मा

'टूटा हुआ दर्पण'

मैंने शान्त मन से,
अन्तर में झाँका,
पाया, एक टूटा हुआ दर्पण ।
दिखाई दीं–एक दिल कई तस्वीरें,
कहीं साम्य नहीं, सभी अलग-अलग भिन्न-भिन्न ।

एक दिखावे के लिये
क्षणिक-स्वार्थ-पूर्ति हेतु,
हाथ पसार हरिजनों से भेंटते ।

दूसरा तत्क्षण, बदला रूप दीख पड़ा,
मन ने धिक्कारा ! छी !

अन्तर के हाथ, अपने साथ, तेजी से झटक गये
धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर
करते हैं कुकृत्य धर्म गुरु कहते हैं ।
धर्महीन सामाजिकता–असामाजिकता के चक्कर में
यूँ ही ठीक था । ऐसे ही ठीक है ।
एक बोला !
ऐसे ही ठीक है ?
भूखों मरना पड़ेगा !
कोई भी कभी पूछेगा नहीं ।

देखा तुमने चाहा नहीं किसीने
वोट तो फिर भी मिले करिश्मे से
मैदान तो मार ही लिया ।

कुछ समय के लिए ही सही,
जीत पा लेने से,
गर्दन अकड़ती है, चाहे धोखा हो हो !
हाँ, धोखा ही तो है ।

दूसरा बोला – अरे मत दो धोखा !
मैंने कहा– क्यों ? क्यों नहीं दूँ ?
सारी जिन्दगी ही महज एक धोखा है !

प्रयत्न करते हुए भी,
जोड़ न सका—
अन्तर को, बाह्य को
टूटे हुए दर्पण को ।

□

भगरचन्द्र दवे

मैं उन लोगों से डरता हूँ....

मैं उन लोगों से डरता हूँ
जो ऊपर से गोरे
औ' अन्दर से काले होते हैं........
जो कहते कुछ हैं
करते कुछ हैं
बनते मानव
पर दानव हैं
जो राम के 'मेकअप' में रावण हैं—
मैं उन लोगों से डरता हूँ........
हँसते हैं वे
अपना बनकर
काम बनाते
अदना बनकर

जो काम निकलने पर
मिनिटों में पाला बदलते हैं—
मैं उन लोगों से डरता हूँ........

दिखते दीन
हृदय मलीन
काया उनकी
तेज विहीन
जो धोखे की टट्टी में शिकार फँसाते हैं—
मैं उन लोगों से डरता हूँ........

ऊपर मीठे
अन्दर कड़वे
करते बुराई
पीठ के पीछे
जो इज्जत खोकर भी
जीने में शान समझते हैं—
मैं उन लोगों से डरता हूँ ....।

धनराम शर्मा

"भ्रमित"

ओ........!
एटमी जगत के मालिको !
मत इतराओ
कि तुमने
विजय का सेहरा
सिर पर लिया है
और
मानवों के विश्व को
स्ववश किया है।
यह तो भ्रम है।

तुमने
मानवता पर

अतिक्रमण किया है
उसका उबलता लहू पीया है
कल्याण के नाम पर
कंकाल पर
त्वचा मढ़ने का ढोंग किया है।

अब भी सम्भलो !
कि तुम
कइयों को मार रहे हो
युद्ध के लिये
और शान्ति बना रहे हो
युद्ध के लिये।

□

तट

वृक्ष, तरुवर, गुल्म लताओं को
सजोता, संभारता रहा हूँ
वन उपवन खेत क्यारियों में
कन्दमूल, फल-फूल व अन्न
उपजाता रहा हूँ
अनेक ग्राम नगर कस्बों को
बसाता रहा हूँ
समय की प्यार दुलार भरी
मन्द धुन सुनाती लहरियों की
थपकियों से
सुख शान्ति की नींद
देता रहा हूँ

किन्तु !
भयानक धसमस की
खाई, भयंकर बाढ़ की
करवट में दब कर भी
नील, यांगटिसीक्यांग
सिन्धु जैसी
सभ्यताओं का इतिहास
बनाता रहा है।

जो साधारण नजर से नजर आ :
उन्हें तो पाने के लिए
जाना पड़ता है मान सरोवर–
और चुगाने पड़ते हैं मोती
वहाँ पर दिख सकते हैं—
एक नहीं अनेकों हँस,
हँस ही नहीं-राजहँस भी
जो आजतक चलाए जा रहे हैं
अपने वंश को,
बनाये रक्खे हैं अपने आप को।
हँसों को देखने पर
ऐसा लगता है–
पृथ्वी इन्हीं के आधार से
गतिमान है,

यह अस्वस्थ हवा

हर सुबह
अगली सुबह सी नहीं होती
हर शाम नया दर्द उग आता है
गीत कैसे गाएं ?
और फिर इन पंक्तियों में
कितना हृदय रीतता है
एक पल होनी बीतता है ।
बड़ी अजीब बात है
कार्यरत रहते हुए भी
मैं शंकित हो उठता हूँ
इसकी उपयोगिता पर
और बनावट से नहीं

यूँ ही अपने को
बोझिल सा महसूसता हूँ।
यूँ तो घटती ही
रहती हैं
दुर्घटनाएँ-घटनाएँ
पर एक कड़वी मनः स्थिति
जीवन बनने पर ही तुल आई है,
दिनचर्या के सिवाय
शेष निर्णय जो रेंगते हैं
मस्तिष्क में
उन्हें पूरा करने की अपेक्षा
स्थगित कर देता हूँ
मुट्ठियाँ तन कर खुल जाती हैं
गर्म हुआ रक्त
ठंडा पड़ जाता है अपने आप
शस्त्रागार में
न जा सकने का गम तो
भूलेगा बीयर बार में
कहाँ-कहाँ चलती है
स्वस्थ हवा
मुझे कुछ ज्ञात नहीं
लू से
झुलसा हुआ मैं
बन्द कमरे में
अन्तिम अहसास की
कल्पना किए जा रहा हूँ!
अब मेरे अन्दर
न नेपोलियन जीवत है
न गांधी
आदर्शों के हवाई किले जो
मैंने
बचपनी उमर तक ही बनाए थे।

अगर कुछ परिस्थितियाँ
करा ही दे मुझे
स्वस्थ हवाओं के
जल्दी लौट आने का अहसास
तो बीच में ही आ जाता है
वक्त तो भद्देपन में बीता
या गुल जो छूट गए
या बीसों पत्र जिनके
जवाब नहीं आए।
और फूट पड़ता है
होठों का एक छाला
जिसमें फैल जाता है
कड़वा तरल सारे मुँह में
इस तरह यह अस्वस्थ हवा
एक बार भी नहीं रुकती।

□

देवेन्द्रसिंह पुण्डीर

तनाव

जीवन रक्त की उष्मा है ।
किन्तु उष्मा,
सामान्य ताप से कुछ और भी है,
वह है तनाव ।
जो एक ओर गति देता है,
तो शक्ति ह्रास दूसरी ओर ।
जैसे उष्मा जीवन का लक्षण है
तनाव प्रगति का ।
इस प्रगतिवादी युग, भौतिक वाद ने,
दिया है तनाव,
मानसिक अधिक और शारीरिक कम ।
मानसिक तनाव ही आधि का मूल है,
मनोविकारों का प्रारम्भ है ।

काश ! यह तनाव न होता,
होता क्यों न,
प्रगति का लक्षण है महत्वाकांक्षा,
कार, कोठी, फ्रीज, इम्पोर्टेड मेटीरियल
मॉडर्न एमेनिटीज एण्ड डिलाइटेड-
लाइफ, विद शोर्ट फॅमिली।
किन्तु,
विधि की विडम्बना,
सभी को सब कुछ,
एक साथ तो नहीं मिलता।
इसीलिए तो होता है तनाव,
शारीरिक ताप के सदृश्य,
कभी घटता है तो कभी बढ़ता है,
जो कमजोरी और ज्वर का प्रतीक है,
निराशा और आशा का।

□

अब्दुल मलिक खान

अभिनंदन

कसौटी से निकले कंचन
नव वर्ष
तेरा अभिनंदन,
वज्रदन्त से शुभ्र हस्त
हृदय ज्यों पावन गंगाजल
खटका करता था
आँखों में
धो डाला तूने वह काजल
सदी जली सी
मानवता पर
लगा दिया शीतल चन्दन।
प्रभात रश्मियों के सागर में
डूब गया सूरज काला

डूबी डूबी सी
लगती है,
मदमाती महँगाई वाला
दूर किया
तूने आते ही
बरसों का आहत क्रन्दन,
तेरा अभिनन्दन।

□

आदमी अब जगने लगा है

कुम्भकर्णी निद्रा से
आदमी
अब जगनें लगा है
पतझर की तरह झर रहे हैं
आलस्य के पात
नव कोंपल किसलय कलियों की उमंग
सूरज के संग-संग
चलने लगा है
हो रहा है ध्वंस्त
भीतर का दानव
बूंद-बूंद अमृतघट भरने लगा है
बढ रहे हैं
चेतना के चरण नित
निर्माण के नये आयाम
खोजने लगा है।

☐

ओला–आँसू–ओस
(विज्ञान और साहित्य की भाषा में)

ओला-आँसू-ओस।
विज्ञान की भाषा में,
कहलायेंगे जैसे—
ठोस-द्रव और गैस।

पानी के तीन रूप
इन्हें विज्ञान बताता।
लेकिन साहित्य
मुहावरों की भाषा मे
इनको यूं समझाता।

ओला !
चहक कर यूं बोला —
सम्भल कर रहियेगा।

निराशा के प्रति

मित्र
तुम-सड़क के पत्थर से
ठोकर खाए हुए मनुष्य की तरह
सचेत होकर भी
अपने जीवन से निराश होकर
भागना चाहते हो
क्यों ?
क्योंकि तुम्हारी परिस्थितियाँ
तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल न हो सकीं।
और तुम्हारी
अनिश्चित व असीमित
इच्छाओं की पूर्ति न हो सकी।
पर थोड़ा सोचो !

कहीं ऐसा न हो जाय,
कि आपके सिर मुड़ाते ही
ओले पड़ जाय।

आँसू !
आँख से आते हैं।
पर मनःस्थिति के अनुसार
विभिन्न रूपों में
जाने जाते हैं।
हर्ष के आँसू-विषाद के आँसू
घड़ियाल के आँसू।

ओस !
कवियों के लिये शबनम है।
बाकी सब के लिये भ्रम है।
इंसान के साथ
प्रकृति ने भी मजाक की है।
क्या ओस चाटने से
किसी की प्यास बुझी है ?

दिनेश विजयवर्गीय

निराशा के प्रति

मित्र
तुम—सड़क के पत्थर से
ठोकर खाए हुए मनुष्य की तरह
सचेत होकर भी
अपने जीवन से निराश होकर
भागना चाहते हो
क्यों ?
क्योंकि तुम्हारी परिस्थितियाँ
तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल न हो सकीं।
और तुम्हारी
अनिश्चित व असीमित
इच्छाओं की तृप्ति न हो सकी।
पर थोड़ा सोचो ?

क्या कभी प्रतिकूल परिस्थिति में
जीने वाली हर इच्छा
कभी पूरी हुई है
या जीवन की असंख्य कामनाएं
आँसू बहाने से पूरी हुई है ?
नहीं !
ये सब भावुक इच्छाएं
जीवन को निराश करती हैं
और इस तरह
हमें टूटने पर मजबूर करती हैं

□

जीवन

अपने अन्तर की गहराइयों में,
झांक कर देखा।
अपनी आंखों की दृष्टि में,
झांक कर देखा॥
तो पाया कि जीवन शाश्वत है।
सौन्दर्य है॥
अभूतपूर्व है॥
परमानन्दानुभूति है
किन्तु जो कुछ बाहर देखता हूं।
अपने शरीर के ऊपर टटोलता हूं॥
तो पाता हूं, वहीं, कोमलता है।
तो वहीं विह्वलता है
वहीं मुस्कान है।
तो वहीं अवसान है॥
वहीं आह्लाद है।

तो कहीं अवसाद है ।।
ये सब कही आकर्षित करते हैं ।
तो कही आन्दोलित करते हैं ।।
यह और कुछ नहीं,
बस भ्रमित जीवन का राग है ।
जितना हम उबले,
उस उबलने की आग है ।।
कहो कभी शान्त उदधि की गहराई देखी है ?
तो क्या कभी मौन चेहरे की चंचलता परखी है ।
प्रेम उत्सर्ग है ।
जीवन का स्वर्ग है ।।
शांति शीतलता है ।
हृदय की निर्मलता है ।।
अतः हे युग प्रहरी—
क्लान्त होकर भी शान्त बन ।
प्रबुद्ध बन ।।
प्रेममय हो ।
और स्वयं में निर्भय हो ।।
उद्‌बोधन को पहचान ।
स्वयं की शक्ति को जान ।।
इससे अभीप्सा जागृत होगी ।
तेरी चाह समुन्नत होगी ।।
इन्हे संकल्प बनने दो ।
अपने अहँ को खोने दो ।।
तुम्हें अब जो कुछ मिलेगा ।
वही अनवरत फलेगा ।।
यही कोमलता है ।
मुस्कान है ।।
आह्लाद है ।
और यही सौन्दर्य युक्त शाश्वत,
जीवन का आनन्द है ।

□

किसनलाल पारीक

क्या दूँ भेंट ?

क्या दूँ भेंट ?
    नहीं है कुछ भी—
जीवन-मधु-घट—
    रीता-रीता ।
पतझड़सा सब,
    जीवन मेरा—
मधुमय भाग—
    कभी का बीता
अब न कहो,
    निज कल-कंठों से—
कोयल गीत—
    सुहाने गाओ ।
अब न कहो,

सावन की बदली—
आती रिमझिम—
रस बरसाती।
मिटी सरसता—
और स्नेह का—
शुष्क पड़ा है—
मन का निर्झर।
कवि से कविता—
रूठ गई है—
हुआ समूचा—
जीवन ऊसर।
आज विभोग—
बना है रावण,
चुरा ले गया—
सुख की सीता।
क्या दूँ भेंट ?
नहीं है कुछ भी—
जीवन-मधु-घट,
रीता-रीता।

दीनदयाल पुरी गोस्वामी

सांध्य वेला

ये सांध्य की वेला !
उठी धूल,
भरा गगन।
खिले फूल,
भरा चमन !
ये नभ मण्डल !
विमान तले,
हरित वृक्ष,
झूम उठे।
ये सांवला सा पवन,
झूमते से वृक्ष,
हवा के झकझोर की,
बहती शीतल समीर।
ये आप उठा भाग।

मानव-नीड़
बना विश्राम स्थल ।
हर्षित है जग,
थकित है मन
कहता नीड़ बना गेह ।
ये सांझ भई !
डोलते से पक्षी,
जा रहे नीड़ को ।
कालिमा को ढक रहा,
छाता हुआ अंधकार ।
ये उठा चंद !
शीतल चन्द्रिका,
खिले तारागण ।
मैंने भी संजोया दीपक ।
उठा हाथ, देखा भाल ।
शिवालय के टंकोर ने,
मन खींचा एक साथ ।
दर्शन की वेला,
पैसा लगे न धेला ।
ये सांध्य की वेला ।।

एक पाती : भाव बोध

पाखी ! लिखूँ आज तुम्हें एक पाती।
मानस-सिन्धु में उद्वेलित
तुम्हारी स्मृतियों के असंख्य ज्वार
निःसहाय कर गये मुझे,
इस नीरव तट पर; दूर क्षितिज पर—
गगन ने झुक कर जाने क्या कहा धरा से,
वर्षों के व्यवधान लाँघती
एक चिर परिचित संवेदना
फिर उभर आई
दर्द की लहरों पर बल खाती
पाखी ! लिखूँ आज तुम्हें एक पाती

स्वप्नारण्य में विचरित अवचेतन को
लगा—
कहीं निकट तुम महकाती यौवन हो,

जग कर देखा—
सुरभित पवन ने मुझे ठगा था।
मुझे देख यों विस्मित, विवश तनिक सा क्रोधित
चली गई वह नटखट—
इतराती इठलाती।
आओ! लिखूँ आज तुम्हें एक पाती।

द्रवित होती आस्थाओं के हिमगिरी
चिर प्रतीक्षित—
मधुर मिलन की आस लिये हैं।
कितने युग बीते?
सांझ सवेरे बनकर—
ये नेत्र अपलक बिछे
तुम्हारी राह तके हैं।
तुम स्वयं नहीं, बस याद तुम्हारी आई
हर बार—
नूपुर सी छनकाती।
आओ! लिखूँ आज तुम्हें एक पाती।

□

रविशंकर भट्ट

लोग जिन्दगी ऐसे जीते हैं

लोग छोटी से स्वार्थ के लिये
पराया हाथी मार देते हैं
अपना घर बनाने में
पूरी गली उजाड़ देते हैं
किसी का सिंदूर पोंछ
अपनी मांग भरते हैं
गजब यह सदमों की
जिन्दगी लोग ऐसे जीते हैं
अपनी धूप छाया के लिये
किसी के जीवन का सावन लूट लेते हैं
पत्थर दिल लोग
किसी के सामने पड़ी थाली छीन

कुमारी कृष्णा गोस्वामी

कल और आज

कल तक मैं दुनियां की नजर में
'सुयोग्य' था 'होशियार' था।
कल तक मैं घरवालों की नजर में
'सपूत' था 'कुल-दीपक' था।
कल तक मैं दोस्तों की नजर में
'जीनियस' था 'होनहार' था।

क्योंकि......
मैंने 'एम. एससी.' में
पाई थी 'फर्स्ट-क्लास'।

लेकिन आज......
इन सबकी नजरों में
'नालायक' ! 'निकम्मा' !

क्योंकि 'पोस्ट ग्रेजुएशन' के दो साल बाद भी
किसी भी इन्टरव्यू में
मैं 'सलेक्ट' न हो सका
अन्य 'शिक्षित' लोगों की तरह
मैं भी 'बेरोजगार' हूँ।

□

शान्तिलाल वैष्णव

अभिशाप

कलियाँ चटकी
चटक के बिखर गईं
पराग कणों की भीनी-भीनी महक
फैल गई चमन में
आवारा बादल सी।
राग छेड़ा मधुप ने
चला अभिसार को
चाहत थी
छू लूँ इन पंखुड़ियों को
पी लूँ सारा मधु,
हो जाऊँ मतवाला।
पर काँटों की दीवार
पार करना दुश्वार

वापिस लौट जाऊँ
मुँह पर कालिख लेकर
नहीं, नहीं
दिल नहीं चाहता लौटने को
हिम्मत कर
हिम्मत की कीमत है।
तोड़ दे दीवार
कूद पड़ मझधार
[illegible]

विवेक जागा
नस्वर है जीवन
केवल मृगतृष्णा है
पानी के भ्रम में
रेत के टीबे हैं
भटकाते मानव को
ठोकरें खाने को
कैसा अभिशाप है
ठोकर पे ठोकर
खाकर सम्भलता है
पुनरावृत्ति करता है
जीवन के पाठों में
शाश्वत न कोई है
पुन भी अनाज के
दानों संग पिसते हैं।

□

सत्यप्रभा र

'खामखा ऐंठे हैं'

इस छोर बढ़ती, महँगाई के ज़माने में
सब तरफ जब यह, शोर मच रहा है ।
'फिर भी नहीं कर पाता जरूरतें पूरी,
जबकि इन्सान दिन रात पच रहा है ।'
धान भी महँगा है, पान भी महँगा है,
तेल, पेट्रोल, केरोसीन महँगा है ।
पेन्ट-कोट साडी-ब्लाउज की बात ही क्या,
ग्राज तो बाजार में, लँहगा भी महँगा है ।
दुकान महँगी है, मकान महँगा है,
जमीन महँगी है, ग्रासमान महँगा है ।
दर्जी, धोबी, नाई, मिसरानी की कौन कहे

तो आप को मित्र ऐसी क्या जरूरत है,
कि दिन पर दिन बहुत सस्ते हो रहे हो ।
जिस किसी ने भी, कोई काम करने दिया,
उसे करने हर पल, हँसते खड़े हो ।
किसी के चाय के कप ने, अपना बना लिया,
किसी की मुस्कराहट ने, अजब सितम ढा दिया ।
कर कोई मीठी बात, आपका दिल ले गया,
साथ ले गया पिक्चर या होटल का बिल दे गया ।
और फिर ये तो, आप ही हैं कि इस,
दुनियादारी पर कुर्बान हो बैठे हैं ।
मेरे सब मित्र मुझ पर, बहुत मेहरबान हैं
ठे हैं ।

ऐसे घेरों में घिरे हुए
लोगों की निपट विवशता पर
दो चार शब्द ही लिख दो तो कवि मानूँगा।

जो रोज लाज का करती है धन्धा
हर रोज बिछौने से ही करे कमाई जो
हर समय प्रतीक्षा बिछी हुई है चेहरे पर
उन घोर दहकते होठों की मुस्कानों पर ही सिकी हुई
दो चार रोटियाँ पाने को
सौ रोटी की गोलाई मे गुँथे हुए
प्रतिपल विगलित होने वाले उस यौवन पर
दो-चार शब्द ही लिखदो तो कवि मानूँगा।

आँखों में आशा मौज भिखारी बालक वह—
धोती लुँगी, पेटों के आगे कई विशेषण टाँक रहा
उन अर्थहीन शब्दों पर लेकिन
एक उपेक्षा थूक बढ रही हैं टाँगें
उस समय, भिखारी बालक की
अभ्यस्त निराशा पर, भैया !
दो चार ही शब्द लिख दो तो कवि मानूँगा।

जो बाहर से हमदर्द दवाखाना बने रहते
भीतर ही भीतर रचते जो चक्रव्यूह
उनकी चासनी जैसी बातों में तुम
भीतर का मैल-मवाद मिलाकर के देखो
ऐसे चिपचिपे घिनौने मिश्रण का लेपन
उनके चेहरों पर करके
असली चेहरों पर
दो चार शब्द ही लिख दो तो कवि मानूँगा।

काची और निपट कुँआरी
सुबह सुन्दरी के जाने कैसे रह गया गर्भ
सूरज सा बेटा लिये गोद में इतरायी
उस भोर कुँआरी मा इस अर्धरात्रि की बेला में

अपने ही बेटे को
रख देती नाली में समझ पाप की परछाई
उस चरम विदाई वेला में
जब वह दुखार्द्र टकटकी लगाये देख रही
उसकी आंखों के
इन ठहरावों पर, भैया !
दो चार शब्द ही लिख दो तो कवि मानूंगा।

□

अनुभाग–२

क्षणिकाएँ

अक्षरों के ओस-बिंदु

△ विजय त्रिवेदी △ मीठालाल खत्री △ सरला पालीवाल
△ देवप्रकाश कौशिक △ गिरधारीसिंह राजावत
△ वासुदेव चतुर्वेदी △ चतुर कोठारी △ धरनी रॉबर्ट्‌स
△ श्याम त्रिवेदी △ विक्रम गुंदोज △ व्रजभूषण भट्ट
△ भूपेन्द्र अग्रवाल △ भगवतीप्रसाद गौतम ।

विजय त्रिवेदी

स्नेह-क्षण

हवा में नमी सी है
जल की सतह पर भी
खामोशी लेटी है !
इस तट पर आकर मत शोर करो
प्यार करने वालों की
दो पंक्तियाँ पास-पास बैठी हैं !

❀

लावारिस बच्चे सा
फेंक गया कोई
मोती, धरती के आँगन :
बड़ा क्षोभ सूरज के मन में

□

सरला पालीवाल

'क्षणिकाएँ'

"ज्योति"

(1)

झिलमिलाते तारे
मुस्कराते
नभ के मोती
सूर्य से बड़े होकर भी
फीकी है,
इनकी ज्योति !

× × ×

देवप्रकाश कौशिक

ग्रेशम का नियम

अर्थशास्त्र में
पढ़ा था
ग्रेशम का नियम—
बुरी मुद्रा
अच्छी मुद्रा को
चलन से
बाहर कर देती है।
जीवन के
कटु अनुभवों ने तो
मुझे सिखवाया है—
बुरा आदमी
अच्छे आदमी को
जमाने में
ग्रसित कर लेता है।

□

वासुदेव चतुर्वेदी

क्षणिकाएँ

बचपन

कली,
जिसने
काँटों में भी,
सुगंध बिखेर दी
खिलने पर,
वह चुपचाप
पाहुने की तरह
विदा हो गया
उठकर!

चतुर कोठारी

जीवन—एक लघुकथा

जीवन
जठराग्नि
एक लघुकथा है।
जिसका शिल्प
बड़वानल की तरह
समय के सागर में
भावों की लहरों में
गुथा हुआ है।
लहरों से जो
अठखेलियाँ करता है
पता—
उसी को चलता है कि—
जीवन में
जीना कैसा होता है ?

□

यौवन

कई भूलों का चौराहा
जिस पर
जवानी की रवानी में
कई गाड़ियाँ टकराईं
घायल दिल को थाम
आहें भरता
छटपटाता रहा
पर 'वह' चली गई ।
नश्तर लगा कर !

बुढ़ापा

बिन बाती तेल का दीपक
झंझावातों में निस्सहाय सा
थरथराती लौ की तरह
इंतजार कर रहा
किसी दम
बुझ जाने का ।

□

चतुर कोठारी

जीवन—एक लघुकथा

जीवन
जठराग्नि
एक लघुकथा है।
जिसका शिल्प
बड़वानल की तरह
समय के सागर में
भावों की लहरों में
गुथा हुआ है।
लहरों से जो
अठखेलियाँ करता है
पता—
उसी को चलता है कि—
जीवन में
जीना कैसा होता है?

□

चेहरा

ग्रावाज़ों के ग्रंधेरे में
हम कुछ कदम चल तो लिए हैं
पर मर्सिया गाना भी कोई जिन्दगी है ?
हर हाथ में
एक फूल तो है-पर फूल कौन चाहता है ?
यहाँ तो काँटों की परिभाषा
को जते की तरह पहिन लो ?
सवालों की भीड़ में-
मेरा चेहरा क्या बोले ?
घिरती हुई शामों में उदासियों के बीच,
किसी एकांत में-
ग्रपने ही ग्राँसू तो पूँजी होते हैं।

मन की किरचों को बीन के
अगर मैं कोई दर्पण बना भी लूँ तो क्या ?
किन्हीं विकृतियों के आयाम,
मुझे ही डरा देंगे।
तब शायद मैं नहीं,
जान पाऊँगा कि यह विकृतियाँ
मेरा ही चेहरा है।

□

श्याम त्रिवेदी

कुछ मिनी कविताएँ

कविता

मानव की अनुभूतियों को
जो उपलब्धियों का स्वर देती है
वही कविता होती है।

खेल

युद्ध चल रहा है
आओ
शत्रु शत्रु का खेल खेलें।

संघर्ष

देखता हूँ
वर्षा की नन्हीं बूँदें
कितनी तेज हो गयी हैं
टकराने के लिए
तूफान के सामने हो गयीं हैं
कितना संघर्ष करना पड़ता है !
जीने के लिए।

सौगात

आज पाश्चात्य सभ्यता
दे रही है कुछ अच्छी सौगातें
गत्तें भरे आदमी
रुई भरी औरतें।

□

कभी दुखों को घटाना पड़ता है;
और कभी-कभी-
चाहों का गुणा करते-करते
आहों का भाग लगाना पड़ता है!

□

भूपेन्द्र कुमार अग्रवाल

पहले जैसा

पुस्तकों सा
सजा दुकानों में जीवन
अपने पाठक की
राह जोता
दीमकों द्वारा
चाट लिया गया।
मात्र खोल
कोरे गत्ते का
अपना
आकार बनाए
स्थान घेरे है।

विकलता ने घेर लिया हमको चुपचाप ।
पृष्ठों की पीड़ा का अब तो ज्ञान नहीं ।
विश्वासी लोग ही यहाँ,
इच्छा काट गये ।
अँधियारे अचानक
रौनक चाट गये ।

अँधियारे उजारे की उधेड़बुन में ।
दुस्तर की पीड़ा का मापी ज्ञान नहीं ॥

किसी की याद आई है,
कि अगहन याद आया है।
हिये का हिम शिखर नाराज-
मौसम ने बनाया है॥

उनके फागुन की होली है,
तो अब बरसात भर लूँगा।

□

श्रीकान्त कुलश्रेष्ठ

हिन्दी गज़ल

चाँदनी जलती यहाँ पानी सुलगता है,
चलो, साथी यहाँ से मन मेरा तड़पता है।
चल नहीं सकता मैं अब पैरों से खून रिसता है,
राह के काँटों में देखो तन मेरा उलझता है।
उम्मीद का कफन ओढ़ा है मेरे जज़बातों ने,
उम्मीद ने उम्मीद को यहाँ लूटा है।
कैसे लाऊँ उन लम्हों को मेरे दिलबर,
उन्हीं लम्हों ने मुझे सरे बाज़ार लूटा है।

☐

सुरेन्द्र कुमा

विदा की घड़ी

कौन जाने क्यों विकल हैं प्राण इस पावन घड़ी में
क्यों विवश आँसू अपावन हो गए हैं ?
स्वप्न घुटते जा रहे हैं साँस जैसे
आस मिटती जा रही है ।
छा रहे हैं याद के रंगीन बादल
उम्र घटती जा रही है ।।
कौन जाने प्रीत के हैं कण्ठ सूखे या भरे हैं
नैन मरुथल या कि सावन हो गए हैं ।
हो रहा विस्तार पगली कामना का
कण्ठ रुँधते जा रहे हैं ।
जम रही परतें अँधेरे की नजर में
नैन मुँदते जा रहे हैं ।।
कौन जाने बेबसी है या खुशी है पुतलियों में

तुम रुपहली भोर की पहली किरन हो
मैं अमा का तम हूँ काला।
तितलियों सी तुम बिचरती हो गगन में
मैं फकीरी वेश वाला।।
कौन जाने प्यास किस-किस द्वार तक ले जाये मुझको
आज मेरे गीत क्रन्दन हो गए हैं।

□

मेरे लिये तो गीत भी
अगीत बन कर चल रहे हैं।

क्या बताऊँ प्राण मेरे,
स्वप्न मुझको छल रहे हैं।

□

आँखों में धीरे से श्रम कोई उतर गया
एक दिन यूँ ही तेरी याद में गुजर गया।
भीड़ भरा कोलाहल बढ़ता है शाम का
यादों में बीत जाता क्षण-क्षण विश्राम का
छत पर गुजर जाता कबूतर का जोड़ा जब-
बार-बार उठता है गीत तेरे नाम का

होठों पर पान का रंग नया भर गया
एक दिन यूँ ही तेरी याद में गुजर गया।
अँधियारे आँगन में रात जब गहरती है
नींद भरी आँखों में हाला उतरती है
सपनों में मन की जब दूरियाँ सिमटती हैं-
तब सब नजदीकियाँ बाहों में भरती हैं

मधुर मुलाकात का सपना सँवर गया
एक दिन यूँ ही तेरी याद में गुजर गया।

□

आतुर उमंगों को,
होठों पर रहने दो ।
दर्द को सहने दो ।।

रातों के साये ने,
धूप को निगला है ।
शमां की किरणों ने,
प्यार भी पिघला है ।।

जीवन की देहरी पर,
प्राणों को रहने दो ।
दर्द को सहने दो ।।

□

सम्बन्धों से कितने घावों जैसा दरद मिला ।
अपनों ने सपनों से बढ़कर, लूटा और छला ॥

चाह द्रौपदी, यौवन अर्जुन, जग है दुर्योधन ।
जीवन ऐसे जिया कि जैसे, गुनगा हुआ वमन ॥३॥

□

पवन के शान्त होने पर,
साँस का मिट गया संकट।

बुझी जब आग माथे की,
दुखों का मिट गया झंझट।

ज्ञान से सत्य मुसकाया।

□

परमात्म दिवाकर तुम मेरा,
केवल इतना उपकार करो।
युग-युग से विरही भावों का,
अब मधुरिम शृंगार करो ॥४॥

□

पर गुन का सुन्दर पंछी देखो, उड़-उड़ हमें लुभाता।
लाख जतन कर-कर हम हारे, पर वो हाथ न आता॥

नंगे बदन, ठिठुर रही ठठरी शीत भरी ये शाम,
मजबूरी के हाथ बिक गई, अधरों की मुसकान॥

□

मैं भूल गया कल सहलाना,
सासों की जलती काया को।
मैं भूल गया कल सहलाना,
पिछलगू पागल छाया को।

सपनों के दीपक बुझते ही,
सौ सूर्य सत्य के उग आये !

कल तक तो खड़ी कल्पना थी,
पलकों की पगडंडी ऊपर।
आँखें मूँदी तो, पहुँच गई,
उर सुधा सिन्धु के ही भीतर।

बस एक बार ही डूबा तो,
कर, कितने मोती मुस्काये !

अंतर को जरा कुरेदा तो,
अधरों पर गीत उभर आये।

हमारे ग्रौर तुम्हारे, चलने की राह एक सी है।
हमारे ग्रौर तुम्हारे, मिलने की चाह एक सी है।
हम तुम जुदा हैं, मगर खूब पहचानते हैं,
हमारे ग्रौर तुम्हारे, दर्दों की ग्राह एक सी है ॥

□

रात-दिन

मै अंधेरे से डर भागा मगर
पीठ पीछे भी अंधेरा
सामने आता अंधेरा
एक दिन को ठेलता है
एक दिन को लीलता है
सब तरफ छाया अंधेरा।

□

हर अँधेरे द्वार पर दीपक उजार देना चाहता हूँ
हर आदमी की राह के काँटे बुहार देना चाहता हूँ
जन्नत की ज़िन्दगी में से घटा लेना भले
इन्सान की खातिर कुछ उम्र उधार लेना चाहता हूँ।

स्नेह जीवन एकता की दृढ़ कड़ी है
प्रगति का हर पथ परीक्षा की घड़ी है।
राष्ट्र-अर्चन में सभी सुख हैं समर्पित
देश की मिट्टी सितारों से बड़ी है।

□

लालों के तुल्य बहादुर भी, ललिता सी रानी पाकर के।
उपवन को रख अक्षुण्य गये, प्राणों की भेंट चढ़ाकर के॥

मोगरा मन्द सा महक रहा, अब्दुल हमीद का पावन सा।
प्रेरणा प्राप्ति का केन्द्र बना, भारत उपवन के जीवन का॥

□

वतन ही ऐसी चीज है
जो जाँ से भी अजीज है
गद्दार जो आये नजर
जी जा उसको मार कर
     आ वतन से प्यार कर।
इस ऊँच-नीच के तले
नफरत यूँ ही बढ़े चले
जो फूट का पैगाम दे
सामने से वार कर,
     आ वतन से प्यार कर।
माया के रगड़े हटा
ये मजहब ये योनियाँ
इन हदों को पार कर
     आ वतन से प्यार कर।
दुश्मन खड़ा है द्वार में
मिला दे जिस्म के खाक में,
'निर्मल' ने [illegible] सदा
कह रहीं [illegible] अभी
बारहा पुकार कर,
आ अभी से प्यार कर।

वतन ही ऐसी चीज है
जो जाँ से भी अजीज है
गद्दार जो आये नजर
जी जा उसको मार कर
　　आ वतन से प्यार कर।
इस ऊँच-नीच के तले
नफरत यूं ही बढ़े चले
जो फूट का पैगाम दे
सामने स वार कर,
　　आ वतन से प्यार कर।
भाषा के रगड़े हटा
ये मजहब ये बोलियाँ
इन हदों को पार कर
　　आ वतन से प्यार कर।
दुश्मन खड़ा है ताक में
मिला दे मिल के खाक में,
'निर्मल' ये उठी सदा
कह रही तेरा जमी
बारहा पुकार कर,
आ जमीं से प्यार कर।

□

मेरे बापू तुझे नमन है

सजग प्रहरी संस्कृति के
ओ युग स्रष्टा महा-मनिषी
मृत्युञ्जयी तुम्हें नमन है।
दंगों के दावानल में
दहक रहा नव भारत का बचपन
विकट विडम्बना बँटवारे की
उलझ रहा था अन्तरतम
अपनी पीड़ा में पछताता
भारत की रग का कण कण
त्याग झोंपड़ी,
भूखा तन और व्यथित मन से
तू दौड़ रहा था
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण

तन ढकने को माटी होगी, और खाने को आहें होंगी,
तब विप्लव होगा, शिव का ताण्डव होगा,
सच मानो वह दिन दूर नहीं,
तब महलों में मातम होगा।
धरती के जन्मे लोगों पर, धरती वाले ही जुल्म करें,
जब बाड़ खेत को खा जाये, रखवाली उसकी कौन करे,
रोटी के बदले लात मिले, उस पर भी दिल की आग सहें,
भगवान धरा पर आयेगा, या खेंच उसे हम लायेंगे।
सच मानो वह दिन दूर नहीं,
पत्थर को फूलों से कटना होगा।

□

नन्दकिशोर चतुर्वेदी

मेरे बापू तुझे नमन है

सजग प्रहरी संस्कृति के
ओ युग स्रष्टा महा-मनिषी
मृत्युन्जयी तुम्हें नमन है।
दगो के दावानल में
दहक रहा नव भारत का बचपन
विकट विडम्बना बँटवारे की
उलझ रहा था अन्तरतम
अपनी पीड़ा में पछताता
भारत की रग का कण कण
त्याग झोंपड़ी,
भूखा तन और व्यथित मन ले
तू दौड़ रहा था
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण

कौन जानता व्यथा तुम्हारी
कितना पीड़ित तेरा दिल था
जो तेरी अँगुली से चल कर
रण-राजनीति में खेले थे।
वो तेरे दामन के नीचे,
तू ने ऊपर झोले झेले थे।
वे छोड़ अकेला तुमको
दिल्ली के तख्तों का सौदा
सौदागर से कर बैठे।
लेन देन में सबसे पहले
दानव की एक दहाड़ हुई
फिर लूट,
छूरे कटारी से पी खून
मृत्यु और जवान हुई।
माताओं का आँचल रोया
बहनों ने भाई खोया
फिर अस्मत यों बदनाम हुई
इन लुटी लाज की लाशों पर
रोता मानवता का मन है।
थी चीत्कार,
शोर था, बटवारे का
भूल गये जो भाग्य विधाता
क्या भाई भाई को मारेगा,
जब हुआ हकीकत का नर्तन
तो तूने दामन थाम लिया
अनसन त्याग तपस्या के बल
सब ने सत्य को जान लिया
तब तेरी पीड़ा के पतझर पर
पागल ने फिर प्रहार किया
चला अकेला छोड़ हमें तू
इस पीड़ा का नहीं समन है।
शहीद दिवस की वेला में
मेरे बापू तुम्हें नमन है।

□

देश का गौरव
कीर्ति
इन सुगन्धियों से सराबोर हो
सितारों तक महके
हमारा देश महक बन चमके ।
आओ !
दिल के सागर में
मनोरम लहरें उठाएँ
ताकि
सतह पर जमी हुई काई और मै
किनारे लग जाए
हमारा अन्तरतम
पावन तरंगों में घुल जाए
नस नस में बहने वाला खारापन
गंगा जल बन जाए ।
बन्धुओ !
आज तक प्रबुद्धों ने ही
समाजी जलाशय को
मगरमच्छों से
मुक्त किया है ।
क्या हम
सम्मुख बिखरे कर्तव्यों को
सहारा नहीं देंगे ?
नहीं । अवश्य देंगे
जो हमारे ही सहारे हों
उनका आधार अवश्य बनेंगे ।
हम जानते हैं
देश को, जनसमूह को
नागरिकों, समाज को
क्या चाहिये ?
नई दिशा नये आयाम
नये मूल्य, नयी परिभाषा
और अविरल शान्ति

दहके हुए चेहरों को मरहम
भटके हुए कंकालों को राह
और
प्रेम व सहानुभूति की रास
आत्मा बल और आत्म विश्वास
बन्धुओं !
क्या हम नहीं बुझाएंगे ?
हम पर टिकी निगाहों की प्यास ।

□

देश का गौरव
कीर्ति
इन सुगन्धियों से सराबोर हो
सितारों तक महके
हमारा देश अरुण बन चमके।
आओ !
दिल के सागर में
मनोरम लहरे उठाएँ
ताकि
सतह पर जमी हुई काई और मैला
किनारे लग जाए
हमारा अन्तरतम
पावन तरंगो में घुल जाए
नस नस में बहने वाला खारापन
गंगा जल बन जाए।
बन्धुओ !
आज तक प्रबुद्धों ने ही
समाजी जलाशय को
मगरमच्छों से
मुक्त किया है।
क्या हम
सम्मुख बिखरे कर्तव्यों को
सहारा नहीं देंगे ?
नहीं। अवश्य देंगे
जो हमारे ही सहारे हो
उनका आधार अवश्य बनेंगे।
हम जानते हैं
देश को, जनसमूह को
नागरिकों, समाज को
क्या चाहिये ?
नई दिशा नये

दहके हुए चेहरों को मरहम
भटके हुए कंकालों को राह
और
प्रेम व सहानुभूति की रास
आत्मा बल और आत्म विश्वास
बन्धुओं !
क्या हम नहीं बुझाएंगे ?
हम पर टिकी निगाहों की प्यास ।

□

रमेशकुमार 'शीत

मेरी माँ ने कहा है

मेरी माँ ने कहा है,
बेटा, घर की रोशनी, ले जाते हैं बाहर
एक दीया जलाना, दरवाजे पर
भटकते राहगीरों को रास्ता मिलेगा।
दूसरा रखना घूरे पर,
सब जिससे आँखें बचाते हैं,
देखेंगे सब उसे,
उसे उपकार का प्रतिफल मिलेग
तीसरा कूए पर जलाना,
प्यासों को पानी देता है,
दिन हो या रात,
सारी छाती खाली कर देता है।

एक दीया रखना चौराहे पर
जहाँ सब रुकते, ठिठकते, भरमते, रास्ता पकड़ते हैं।
मेरी माँ ने कहा है,
बेटा, दरवाजा बन्द करो तो
खिड़की खुली रखना
सुबह सूरज, वहीं से देखेगा—
हम जगे हुए मिलना।

□

अनुभाग–४

राजस्थानी कविताएँ

सांवर दइया

थारो रस्तो देखै भोर

सांवट हिम्मत
कर पग काठा
बध आगे तूं
　　कै थारो रस्तो देखै भोर !
खेतां री तिरस बुझावण नें
नित नूंवी नहरां आवै
मबकै जमानो सवांठो
छाट्यां भर-भर लावै
　　पण रुक मत जाइजै लाडी
　　भोर लगाणो है की जोर !
थारा दुख दालद दूर करण नै
करड़ा पग उठाया सरकार
पण खाली सरकार कांई करै

अब ताईं यूं मीं हुवै तयार
थारै ही हाथां है साझो
थारै सुख सुपनां री डोर।
मुद री ताकत नैं पीछाण तूं
बदल सकै लेख री लकीरां
देश नैं दाब्यां बैठ्यो अंधारो
ले धाव, उठ, भाग! मिल धोरां
हिम्मत सूं ई चिणीजैला
सुपनां रा महल नुंवा नकोर
सांवट हिम्मत
भर पग काठा
बध आगै तूं
कै थारो रास्तो देखै भोर।

मोठालाल खत्री

मिनखपणो

आपां नी देखतां
फूलां माथै माखियां उड़ता-बैठतां
पण आपां क्यूं फूलां माथै नीं बैटता
आपां तो मिनख हां
भगवान् री सब सूं चोखो रचनावां
कांई आपां भी
माखियां ज्यूं
मी-मो रो ढगळो माथै
(रिश्वत, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद
सरीखी बुराइयां माथै)
उटणो-बैटणो चावा हां!
कांई आपां अर माखियां मांय
को फरक कोनी?

□

जद मन रा राज
श्रापस में
कही जए लाग जावै
समझलो, मन मिलियोड़ा है।

जद मन रा राज
श्रापस में
कही जण लाग जावै
समझलो, मन मिलियोड़ा है।

यह मन का भाव
सावन में
वही अब भाग आवें
गमगमो. मन मिनिदारा है।

मोहनलाल शर्मा

क्षणिकाएँ

जकी वातां ने आपां
नां ही तो लिख सकां
और नां ही कह सकां
मन राजा कई जै

भाग्य री लकीरां ने
लारे छोड़ परो
आगे बढ़ जावण रो ना
पुरुषारथ।

जीवण री राज घड़िये
पण ! वीनै ढूंढण री
फुरसत कोनै।

उर मन रा राम
धारण में
कहीं मत भाग जावें
समझो, मन जिन्दादा है।

o

मोहनलाल शर्मा

क्षणिकाएँ

जकी बातां ने आपां
नां ही तो लिख सकां
और नां ही कह सकां
मन राजा कई जै ।

भाग्य री लकीरां ने
लारे छोड़ परो
आगे बढ़ जावण रो नाम ही है
पुरुषारथ ।

जीवण रौ राज घड़ियोड़ो है
पण ! बीनै ढूंढण री
फुरसत कोनै ।

जद मन रा राड
भारत में
कठी जग भाग जाई
समझणो, मन मिनियारा है ।

o

करणीदान बारहठ

गांवतरो

उठ, चाल,
अंगड़ाई मत ले,
आळस मत ना खिंडा,
गांवतरो है।
रस्तै में सुस्ता लेइ,
खेजड़ी रै नीचै
कैर रै ओलै
फोग रै सारै
गांवतरो है।
पाणी पीले,
फेर पीले
लोटड़ी सागै लेले
तिस भर ज्यासी।
गांवतरो है।

थकग्यो,
गोडा टूटै
पसीनो चूमैं,
तावड़ो लागै
भ्राज्या
सारो लेले,
चीलम पीले
फेर चालणो है ।
गांवतरो है ।
मनड़ै ने मत मार,
बो देख,
टीव रै स्रोलै
गांव भ्रासी,
गांव में पिणघट होसी,
छिम छिम बाजती
उठ चाल,
गांवतरो है ।

□

ए. बी. कमल

डोरी

हूं के केवूं जो को बात सुणो,
मिनखा में आयो मिनख पणो।
बखत टेम वो लदग्यो है,
जद धणी बण्यो हो जणो-जणो।
चोखो खाम्रो, चोखो पैरो मोज उड़ाम्रो,
नाचो, गाम्रो, चंग बजाम्रो।
पण एक बात री निगे राखो,
म्रठे बीस सूत की डोरी लटके।
जीको ईनं नहीं मानै बीनैं,
म्रा घाल गळे में पटके।
देख लटकती ई डोरी ने,
काम चोर तो सगळा डरग्या।
कूड़ा की कै बात केवूं,
तसकरियां रा मायत मरग्या।

पैली तो ईनै ग्राफत समझी,
ग्रब मजो ईरो ग्रावण लाग्यो
ग्राकाशां छूतो भाव ताव,
जद धरती ने धोख लगावण लाग्यो ।
निरवलियां ने राहत मिलगी,
किरसो खेता में तेजो गावण लाग्यो ।
चूस-चूस मिनखा ने मौज उड़ाता हा,
ग्रब सांस सूखगी चूसणिया की ।
ग्र र सोटी-पीटी गुम कर दी है,
वात-वात में रूसणोयां की ।
जाय देखलो, ग्राज पड़ी है खाली कोठी,
ग्रण मीते माल ताल ने ठूंसणिया को ।
केवण में तो बीस सुत की डोरी है,
पण देखण में ग्रा जाडी है ।
कै बात कैवूं, ईंरी ताकत री
घणीयाणी ईंरी ठाडी है ।
वारी जाऊं ई डोरी माथे,
ग्रा डोरी है लडलूम्बा हाली ।
वारी जाऊं ई डोरी माथे,
ग्रा डोरी है, झड़ झूम्बा वाली ।

□

रामशंकर दुबे

वर्षा और किसान

विरखा ए तूं म्हारे खेत मत आव-तूं म्हारे गांव मत आव
गए बरस तो काल मारगो-
ऊपर आ मेंगाई,
अबके जद तूं बरसन लागो-
खेत रई ना खाई,
कि थारी कांई मरजी,
कि आलो काल पड़सी,
पछे यों कीकर सरसी ?
विरखा ए तूं म्हारे खेत मत आव-तूं म्हारे गांव मत आव ।

एक हो दूंडो वो भी पड़गो-
सिर भी कटे समाइ,
गाज-गाज ने हाल तूं बरसे -
कांइ करेला सफाई ?
कि थारी कांई मरजी,
कि आलो काल पड़सी,
पछे यों कीकर करसी ?
विरखा ए तूं म्हारे खेत मत आव-तूं म्हारे गांव मत आव ।

चार बार तो खेत बुवाया-
भागे रयो उधार,
जो भी ऊग्यो-बेर चाटगी-
ग्रौर दियो उजाड़,
कि थारी कांई मरजी,
कि ग्रालो काल पड़सी,
पछे यों कीकर करसी,
बिरखा ए तूं म्हारे खेत मत ग्राव-तूं म्हारे गाँव मत ग्राव ।

बाडे में तो सागर बडगो-
गयो नीरणी खाय,
दावां ने ग्रब कंई नीरूला-
कांकड़ मे के खाय ?
कि थारी कांई मरजी,
कि ग्रालो काल पड़सो
पछे यों कोकर करसी
बिरखा ए तूं म्हारे खेत मत ग्राव-तूं म्हारे गाँव मत ग्राव ।

□

[illegible] चतुर्वेदी

कांई तोल छी

कांई तोल छी क'
अंध्यारो हटज्या गो,
म्हूं तो समझ छो-
रात म्हं टलैगी
दण को उजालो अबणू
कदी न' दीसंगो।
मं 'न' आपणो आछी भली आंख्यां न'
सरजन सूं कढवा अर'
धुन्ध् की आंख्यां
वां की ठोर्यं प' जडवा ली छी
घणो आणंद
म्हूं जद सूं ही भोग' छो।
कालो धण
जीं न' ओर म्हं देख' छा
म्हूं सोर' जो र्‌यो छो।
अकचक यो कांई होग्यो ?

वीजली बलै ज्यूं-
अंध्यारो दफा होग्यो ।
अब तो चांरू आडी
दण को उजालो छ' ।
घुग्घू की आंख्यां सूं
कांई भी न्हें दीसै
कानां सूं सुणूं छूं
पुलिस आबा हाली छ'
काली कमाई न'
लेजाबा वाली छ'
करमटो ठोकतो
पोल म' ऊबो छूं
कांई तोल छी क'
अंध्यारो हट ज्यागो ।

□

मोहम्मद सदोक

गीत

सावर ये री सारंगो
तूं सतरंगी तूं बदरंगी,
कठे तो बाजे पांव पेंजणी
कठे तूं साधे मध नंगी-सावर ये री ....

गुर साध्यां सुध साधे माध्वी
मुलरो सावण मरो मो
मिनख मानखे मोमी निपजे
रिमझिम मेहूणो बरसे सो
हम्यां गाज मिलेला मोनो
मूण री है मंगा-सावर ये री सारंगी........

पा-पा- पगल्यां घरकूचां
मुळकाय पौढ़गी मेहलां में
ले चूक अचूक अलाप लियां
मल्हारां गाती ताना में
कदे बिलखते आंगणये
अब वणी छबीली छाना में
कठे तो रोटी राग रोवती-ताल टूटगी ताना में
कठे तूं ओढे साल दुसाला-कठे ना लाधे
इकं अंगी-सांवर ये री सारंगी........

देवरियो नखराळो मिलज्या,
घूंघट बीच मुळक जावै ।
"दयोराणी ल्या देस्यां लाडा"
भाभी नैणां समझावै ।
घड़ियो ले फळसै मैं बड़तां
पिवजी मधरा बतळावै ।
पणिहारी लजखाणी मन मैं—
पाणी बण बा ढुळ जावै ।
घड़ियो मेल इंडुणी मेलै
टग-टग महलां चढ़जावै ।
दरपणियै मैं मुखड़ो जोता—
राता मैण मुळक जावै ।

□

कागद नै, एकै सागै
ग्ळाय दैवो
जकै सूं
दोन्यू आपरो
अहम् भूलनै
एक बिखराव
नमझ सकै ।

□

उठाईगीरा ज्यूं
हरकाई उठार ले जावे

परोपकारी छांव
कारावास काटे

सूरज
थावर में बैठ्यो सब देखतो रह्वै
आपरी हठ धर्मी माथै
ठठार हंसे
भगतो माथे
अभिमान करै

श्रोज सूं भर्योड़ो
बादळां रो दळ
सूरज री भगतो माथै
पाणी गैर देवे

सूरज
आपरी हार मानै
मूंडो ढांक लेवे

□

विश्वम्भरप्रसाद शर्मा

बिरखा : फूठरापै का रूपक

कुदरत मांड्या मांडणां,
मन मे रीजी भोत
सांवण भादवो बीवलां,
जोदी जोत स्यूं जोत ।।

अम्बर पूछ्यो सुण धरा,
कीयां कर्यो गुमान ।
आया सांवण भादवो
म्हारै घर मेहमान ।।

म्हे "कुं टू" म्हैं "पो" सूं छूं,
बनराय रह्यो गरणाय ।
टी बूंटो को टेर मै
सावण भादवो न्हाय ।।

मोंट हुया मट्ठ कायरा,
बण्या मतीरा भोग ।
सांवण भादो पांगर्‌या,
मिल्या घणेरा जोग ॥

दूध वरण अम्बर हुयो,
मिली धार सूं धार ।
अक जोव वण ऊतर्‌या,
सांवण भादवो आ' र ॥

सांवण सोह्यो रामजी,
भादो लखन विसेस ।
सीता बणगी मरुधरा,
सोवै मरुधर देस ॥

कल्यां सा' रै कूंपळ्या
अे ! कुण बांधी भीच !
सांवण भादवो फूठरा,
हांस्यां आंख्यां मींच ॥

अमोलकचन्द जांगिड़

सूरज बाप

पूरब में
उगतै सूरज बाप री
धवळ ऊजळी किरण्यां
जाणी
हिवाळै रै हिरदै सूं
तपसी रै गाढै तप-ध्यान री
दूधां भरियो चांदी री थाळ
माभै सूं ऊफणतो
मायड़ रै मांगणै
अणगिणती अणमोल
इमरत री तूरक्यां छोड़
बढ़तो भावै है
अेक नवो सनेसो ल्यावै है ।

□

मानसिंह

पाछो आजा रे

कर टिचकारी चलै घोड़लो,
मुळ कै मीचै आंखड़लो ।
देख देख नै रेत रमतिया,
खिलै धरा री पांखड़लो ।।
मोत्यां मूंगा वाळपणा थूं, पाछो आजा रे
सुख सुरगौरो धरती माएं,
ग गा गोरी गावै रे ।
माय बैन अर बापूजी नै
छपणी फूंदी भावै रे ।।
मोत्यां मूंगा वाळपणा थूं, पाछो आजा रे
ठुमक चाळणो, नैण मटकणो,
रूस रेत लुटणाई रे ।
थारा मीठा बोलां आगै,
...लहणाई रे ।।
...णा थूं, पाछो आजा रे ।।

मुळकरण माथै हीरा वांरू,
निछरावळ निजरां मोती रे।
धन्न जमारो मायड़ मानै,
जद थूं मांगै "लोती" रे ।।
मोत्यां मूंगा बाळपणा थूं पाछो म्राजा रे ।।
गोरा गाळां मोती ढुळकै,
जग री सम्पत म्रा' ई रे।
सूखो हिवड़ो सरस रसीलो,
मरुधर बरखा म्रा' ई रे ।।
मोत्यां मूंगा बाळपणा थूं, पाछो म्राजा रे।
नन्द जसोदा गोप्यां रीझी,
घणो सूरजी गायो रे।
मिनख पणो भगवान बणायो,
राधा रे मन भायो र ।।
मोत्यां मूंगा बाळपणा थूं, पाछो म्राजा र ।।

□

(५)

दूध जणां दन उजळो, पूत लड़े रण-खेत।
माँग जणां दन उजळो, कंथ कटे भू-हेत ।।

(६)

चम-चम चमके चूड़लो, सुण आलि उण हाथ ।
जिणरा साहब देश हित, हरख कटावे माथ ।।

(७)

वेरी मार.र वेन रे, भिजवाजे रजपूत ।
आंस्यां री राख्यां करूँ, आंतड़लयां रो सूत ।।

(८)

आंख लुटा जो कागलां, चील चुगाजो मांस ।
पण वेर्‌या रा कालजा, काट भिजाजो पास ।

(९)

लिखजो तोड़या टंक थे, ओ कतरा राडा ।
वेर्‌यां छाती ऊपरे, कीदा कतरा वार ।।

(१०)

बाल-पणा में गेंद सूँ, गण-गण खेल्या-खेल ।
वेर्‌यां बम्म धुड़ावजो, रण-भूमि में छेल ।।

(११)

उण दिन करसूं आरत्यो, जामण जाया वीर ।
वेर्‌या रा लोह्यां रंग्यो, जण दिन ओढूं चीर ।।

(१२)

कह मारे रण भोम जा, समाचार सुण दूत ।
देश लजावण नृप मरो दध लजावण पूत ।।

(१३)

इं धण में ओपण घणां गण-गण कट्यां न दोस ।
रण पोढ्या पिव एकला, हेली कर अमरोस ।।

फतहलाल गुर्जर

वीर-विरदावली

(१)

ए सखि ! साजन आविया, रण जीत्यां निज गोर ।
आंबा कूकी कोयलड़ां, बागां नाच्या मोर ।।

(२)

अरि लोह्यां कर पिव रंग्या, हूँ सत मेन्दो हाथ ।
अगन देव री अंक में, सत-घर चढ़ी बरात ।।

(३)

लेऊँ कोटि वारणा, सत-सत वारूँ प्राण ।
रण-सेजां पोढ्या पिया, मुँड़े ले मुसकाण ।।

(४)

पिव पोढ्या रण-खेत मां, आंजस सूँ गरमाय ।
ए उमग्योडी बादली !, छायां करजे जाय ।।

(५)

दूध जणां दन उजळो, पूत लड़े रण-खेत।
माँग जणां दन उजळी, कंथ कटे भू-हेत ॥

(६)

चम-चम चमके चूड़लो, सुण आलि उण हाथ।
जिणरा साहब देश हित, हरख कटावे माथ ॥

(७)

बेरी मार'.र बेन रे, भिजवाजे रजपूत।
आंख्यां री राख्यां करूँ, आँतड़ल्या रो सूत ॥

(८)

आँख लुटा जो कागलां, चील चुगाजो मास।
पण बेर्‌या रा कालजा, काट भिजाजो पास।

(९)

लिखजो तोड्‌या टेक थे, ओ कतरा राडा।
बेर्‌या छाती ऊपरे, कीदा कतरा वार ॥

(१०)

बाल-पणा में गेंद सूँ, गण-गण खेल्या-खेल।
बेर्‌यां बम्म धुड़ावजो, रण-भूमि में ठेल ॥

(११)

उण दिन करसूं मरस्यो, ज: ..
बेर्‌या रा लोह्यां रंग्यो, जग्र ि

शिवराज छंगाणी

खीलिया रे ! खीली खोल

खीलिया रै खीली खोल
मुख सूं मीठो बोल
पणघट पणिहार्‌या आयी
ठाला सै गागर ल्यायी
आयो रे आयो रे आमी पाणी रो भरियो डोल

खीली खोल

उग्यो सूरज आगूणो, गळचक गरणावै भूणो
सांसां री डोर लागै आसारो कोठो भूणो
बरत नै संभाल रै, बात मती टाळ रै
थारी मैनत रो करले मोल

(१४)

मुण्ड उँछालो ठोकरां, गेंद बणा आकाश ।
पण नागां भिजवावजो, वांरी धण रे पास ।।

(१५)

काची ओढ़ूँ चूँदड़ी, जो आवोला हार ।
ओढ़ कसूमल ओढणी, जीत्या करूँ जुहार ।।

(१६)

हारयां पुण हिवड़े जड़्या, घण-घण बजड़ किंवाड़ ।
थारां-मारा प्रेम बिच, पिवजी पड़्या पहाड़ ।।

(१७)

गोरी ऊभी बारणे, कंकू माँग पुराय ।
मन चित्या वांधे मता, रण जीत्या कद आय ।।

(१८)

पीव शबद कर पपीहा, विरथा यूँ मत बोल ।
बालम रण, हूँ सत चढ़ी, सुण ने माड़ ढोल ।।

(१९)

सूरज उगो ए सखि, कंकू-किरण-पसार ।
चोक पुराऊँ मांडणां, रण जीत्यां भरतार ।।

(२०)

घण जीत्या गढ़ कांगरा, जीत्या देश-विदेश ।
आखिर जाणों साहिबा, आपां ने वीं-देश ।।

□

"सराब !
को भलाई;

होठ र जीभ तूं आगे मसर नीं भाने ।
मांयलो काळजो तो आंतांरे कब्जे है ।"

"कब्जे तो है,
पण मनूळ कठेई
आपणे वेल्यां ने आफळ बाफळ ना करदे !"

बात चालै होज ही—
कै ऊचक र ऊंचो देख्यो
धरती है आभे तांई, बाज रह्यो है सरणाट ।
डिगियोड़ा मैल, ने जमियोड़ी हवेल्यां,
सगळा ही लड़थड़ ।
सामो आयो र गयो-ऊपड़ रैया है बरणाट ।
वेल्यां में भग्गी पड़गी—

"भाजो ! भाजो ! बैठो ! लुकज्यावो,
हाथ जोड़ो, आंख दिखावो ।"
सगळा ही पैंतरा फैल हुयग्या ।

"आपात-भवानी रो डंको बाजगो;
कै ए गरीबड़ा लोग भी,
लाठ्यां लेर गैल हुयग्या ।
अबै कांई करां ?
"माल गोदाम तो संभालो ।"

"बाने तो खाकी कपड़ां वाळां, पैला होज संभाल लिया ।"

"बखत मत गमाओ
हाकम ने अरजी दे

"तेजूरयां र लोकरां रो माल—
तो जमी दोट करावो
की–तो बचावो।"

"सेठां ! बांरी तो लिस्टां बणगी
और बो पीळीयो सोनो—
काळो हुग्यो !"

"फूटग्या करम !
पीळ्यां तांई बडेरां रुखाल्यो र्
पीलो जाण्यो।"

तकदीर रो लोढो लाग्यो।
सगळोई काळो हुग्यो।

"सात साहूकार वाजता, आज चोर हुयग्या।"
अब तो कोई हाई गेर मारो,
ऊंचलो पावर लगावो।"

"ईं वेळ्यां मदत करणिया
घणा साक तो मांई दीसे है।
मांय बैठा ही दांत पीसे है।।

भाभाल-भवानी रे भोळे में,
म्हारी तो पावर री पुड़िया ही उडगी।"

मेंगाई नै रिश्वत
दोनूं बैनां पड़ी सिसकै है
केठा मरसी क रैसी ?
आ वात तो अगली बखत कैसी।

"गराब !
को भलाई;
होठ र जीभ सूं आगे असर नीं चाले ।
मांयलो काळजो तो आपांरै कब्जै है ।"

"कब्जे तो है,
पण भतूळ कठेई
आपणे बेल्यां ने धाकळ बाकळ ना करदे !"

बात चाले हीज ही—
के ऊचक र ऊँचो देख्यो
धरती हूं आभे तांई, बाज रह्यो है सरणाट ।
हिगियोड़ा मैल, ने जमियोड़ी हवेल्यां,
सगळा ही लड़यड़ ।
सामो आयो र गयो-ऊपड़ रैया है वरणाट ।
वेल्यां में भग्गी पड़गी —

"भाजो ! भाजो ! बेठो ! लुकज्यावो,
हाथ जोड़ो, आंख दिखाओ ।"
सगळा ही पेंतरा फैल हुयग्या ।

"आपात-भवानी रो डंको बाज्यो;
के ए गरीबड़ा लोग भी,
लाठ्यां लेर गैल हुयग्या ।
अबै कांई करां ?
"माल गोदाम तो संभालो ।"

"बाने तो आको कपड़ां वालां, पैना हीज संभाल लिया ।"

"बखत मत गमाओ । "
हाकम ने अरजी टेको र् स्टे लावो ।"

"हाकम तो आंरे सागे हीज है ।"
"ओ के फैताळ चाल्यो ?
सगळा ने थळ थळै कर दिया-"
एक हाथ तो जोखमीज ग्यो ! -
अरे मुनीम जी !

संकल्प स्वरों के

हिन्दी

आकाश अक्षरों का

1 श्री भागीरथ भार्गव	89, आर्य नगर, अलवर
2 श्री कमर मेवाड़ी	चाँदपोल, कांकरोली
3 डॉ. राजानन्द	रा. जैन उच्च माध्य. विद्यालय, बीकानेर
4 श्री जनकराज पारीक	ज्ञान ज्योति उ. मा. वि., श्रीकरणपुर
5 श्री वासु आचार्य	बाहेती चौक, बीकानेर
6 श्री श्रीनन्दन चतुर्वेदी	रा.उच्च माध्यमिक विद्यालय, बारां
7 श्री सांवर दइया	द्वारा-श्रीकानीराम, जेलसदर रोड, बीकानेर
8 श्री त्रिलोक गोयल	अग्रवाल उच्च माध्यमिक विद्यालय, अजमेर
9 श्री मोहम्मद सदीक	शिक्षण प्रशिक्षण महिला विद्यालय, बीकानेर
10 श्री बलबीरसिंह 'करुण'	रा उच्च माध्यमिक विद्यालय, हरमोली
11 श्री ओम केवलिया	रा. करणी उ. मा. वि., देशनोक
12 श्री मनमोहन झा	नागरवाड़ा, (बांसवाड़ा)
13 श्री महावीर जोशी	रा. मा. वि. टीबा बसई (झुंझनू)
14 श्री नारायण कृष्ण 'अकेला'	रा माध्यमिक विद्यालय, माही (उदयपुर)
15 श्री अशोक पंत	रा. उच्च माध्यमिक विद्यालय, भरतपुर
16 श्री नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'	रा. उ. मा वि., कांकरोली (उदयपुर)
17 श्रीमती वीणा गुप्ता	श्रीराम विद्यालय, उद्योगपुरी, कोटा-4

18 श्री भंवरसिंह सहवाल — रा. शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय, मथुरा
19 श्री महेशचन्द्र वर्मा — रा. ओसवाल जैन उ. मा. वि., अजमेर
20 श्री मगरचन्द्र दवे — रा. उ. प्रा. वि., चितलवाना (जालोर)
21 श्री चैनराम शर्मा — उ. प्रा. विद्यालय, मावली (उदयपुर)
22 श्री ब्रजेशचन्द्र पारीक 'पंछी' — रा. दरबार उ. मा. वि., सांभरलेक
23 श्री पुरुषोत्तम 'पल्लव' — रेल्वे स्टेशन, कुंआरिया, (उदयपुर)
24 श्री निशान्त — द्वारा–हरिकृष्ण, बांसल भवन, पीलीबंगा
25 श्री देवेन्द्रसिंह पुण्डीर — रा. उच्च माध्य. विद्यालय, बहरोड़
26 श्री अब्दुल मलिक खान — प्राथमिक विद्यालय, नलखेड़ी (झालावाड़)
27 श्री मणि बावरा — रा. नगर उच्च माध्यमिक विद्यालय, बांसवाड़ा
28 श्री गोपालसिंह अग्रवाल — रा. उच्च प्राथमिक विद्यालय, खानुआं,
29 श्री दिनेश विजयवर्गीय — भैरूगेट, बालचंदपाड़ा, बून्दी
30 श्री काशीलाल शर्मा — शि. प्र. अ., पं. समिति, आसीन्द
31 श्री किसनलाल पारीक — रा. माध्यमिक विद्यालय, पूलासर (चूरू)
32 श्री दीनदयाल पुरी गोस्वामी — शिक्षक, सादड़ी, (पाली)
33 श्री प्रेम शेखावत 'पंछी' — रा. उ. प्रा वि., नांगलकाङ्क, (जयपुर)
34 श्री रविशंकर भट्ट — शि. प्र. अ, पंचायत समिति, बनेड़ा
35 कु॰ कृष्णा गोस्वामी — गोस्वामी चौक, बीकानेर
36 श्री शान्तिलाल वैष्णव — रा. उ. प्रा. वि, मिलोरा (अजमेर)
37 श्री सत्यप्रभा गोस्वामी — श्री बीकानेर म. मंडल, (बीकानेर)
38 श्री भवानीशंकर व्यास — रा. मा. वि उदयरामसर, (बीकानेर)

अक्षरों के प्रोम बिन्दु

. श्री बजरंग त्रिवेदी — रा. उच्च प्राथमिक विद्यालय, कोटड़ी

40 श्री मीठालाल खत्री	रा. प्राथमिक विद्यालय, कोतवाली, जालौर
41 सरला पालीवाल	रा. बालिका उ. प्रा. वि., कुंवारिया
42 श्री देवप्रकाश कौशिक	रा. उच्च माध्यमिक विद्यालय खेजरोली
43 श्री गिरधारी सिंह राणावत	रा. माध्यमिक विद्यालय, कोलिया (नागौर)
44 श्री वासुदेव चतुर्वेदी	पोस्ट आफिस के पास, छोटीसादड़ी
45 श्री चतुर कोठारी	रा. उच्च माध्य. विद्यालय, राजसमंद
46 श्री अरनी रॉबर्ट्स	रा. उ. मा. वि., बारां (कोटा)
47 श्री श्याम त्रिवेदी	रा. उ. माध्यमिक विद्यालय, मेड़ताशहर
48 श्री विक्रम गुन्दोज	चौपासनी विद्यालय, जोधपुर
49 श्री व्रजभूषण भट्ट	रा. उ. माध्य. विद्यालय, जवाजा,
50 श्री भूपेन्द्र कुमार अग्रवाल	रा. शि. प्रशि. महिला वि., (बीकानेर)
51 श्री भगवती प्रसाद गौतम	रा. उ. माध्यमिक विद्यालय, भवानीमण्डी

शब्दों को सप्त पदी

52 श्री सुरेश पारीक शशिकर	रा. उ. प्रा. वि., खेजड़ी, वा. भीलवाड़ा
53 श्री जगदीश सुदामा	श्री कृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर
54 श्री कैलाश 'मनहर'	स्वामी मोहल्ला, मनोहरपुर (जयपुर)
55 श्री श्रीकान्त कुलश्रेष्ठ	सेंट पाल स्कूल, मालारोड, कोटा
56 श्री अवधनारायण पाण्डेय	रा. उ. माध्य. विद्यालय, बान्दीकुई
57 श्री केरोलीन जोसफ	मोहन कॉलोनी, बांसवाड़ा
58 श्री सुरेन्द्र कुमार	ज्ञान ज्योति उ. मा. वि., श्रीकरणपुर
59 श्री लक्ष्मीलाल बूलिया	रा. माध्यमिक विद्यालय, डूरड़ा
60 श्री अर्जुन अरविंद	काली पलटन रोड, टोंक
61 श्री फतहलाल गुर्जर	रा. उ. प्रा. वि, (प्रथम) कांकरोली
62 श्री अजीज आजाद	रा. सादुल उ. मा. वि., बीकानेर
63 श्री कुन्दनसिंह 'सजल'	रा. माध्यमिक विद्यालय, पाटन

64 श्री प्रेमानन्द कुलीन	445 शास्त्रीनगर दादाबाड़ी, कोटा-6
65 श्री योगेश जानी	रा. उ. प्रा. वि., नं. 1, बड़ीसादड़ी
66 श्री कल्याण गौतम	बीनादेसर डेरा, मोतीपा, बीकानेर
67 श्री जगदीश 'विदेह'	श्री महावीर उ. मा. वि., भीलवाड़ा
68 श्री इन्दर धाउवा	तारड़िया रा. उ. मा. वि., जसवंतगढ़
69 श्री रमेशचन्द्र शर्मा 'इन्दु'	रा. उच्च प्राथ. विद्यालय, सोहू (अलवर)
70 श्री गोपाल प्रसाद मुद्गल	ब्राह्मेय मोहल्ला, डीग, (भरतपुर)
71 श्री मदन याज्ञिक	पीरामल उच्च माध्य. विद्यालय, बगड़
72 श्री रामस्वरूप परेश	बी. एल. माध्यमिक विद्यालय, बगड़ (झुन्झुनू)
73 श्री रूपसिंह राठौर	रा. उ. प्रा. वि., दाताधासीराम, वा. विशनगढ़
74 श्री म०प्र० कश्यप	रा. उच्च प्राथ. विद्यालय, गन्दीफली (कोटा)
75 निर्मला शर्मा	बालिका प्रा. वि., सेमा, पं. स. खमनोर
76 श्री अमृतसिंह पँवार	रा. माध्यमिक विद्यालय, गांगाणी,
77 श्री नंदकिशोर चतुर्वेदी	रा. प्रा. वि., गोपालपुरा, पं स. वैरू
78 श्री मोड़सिंह मृगेन्द्र	धोरिया, पो. घाटा, वा. चारभुजा (उदयपुर)
79 श्री रमेशकुमार 'शील'	रा. उ प्रा वि, वदरारेड़ा (भरतपुर)

राजस्थानी

डूंगर आखरां रा

80 श्री सांवर दईया	द्वारा-श्री क रामनी, जेलरोड रोड, बीकानेर
81 श्री मीठालाल खत्री	डाबीलेन, सिरोही
82 श्री मोहनलाल शर्मा	रा. उच्च माध्य. विद्यालय, तारानगर
83 श्री करणीदान बारहठ	रा. उ. मा. वि., झुंझनूं
84 श्री ए. वी. कमल	रा. उ. प्रा. वि., पुलिसलाइन, बीकानेर
85 श्री रामशंकर दुबे	रा. मा. वि. कुचेरा

86 श्री नदन चतुर्वेदी	रा. उ. मा. वि. बारां (कोटा)
87 श्री मोहम्मद सदीक	रा. शि. प्र. महिला वि., बीकानेर
88 श्री किशन लाल पारीक	रा. माध्य विद्यालय पूलासर (चूरू)
89 श्री मुरलीधर शर्मा 'विमल'	रा. उ. माध्यमिक विद्यालय, मेड़ताशहर
90 श्री रामनिवास शर्मा	भारतीय विद्यामन्दिर, बीकानेर
91 श्री अर्जुन अरविंद	काली पलटन रोड, टोंक
92 श्री विश्वम्भर प्रसाद शर्मा	विवेक कुटीर, सुजानगढ़ (चूरू)
93 श्री अमोलक चन्द जांगिड़	रा उ प्राथ. विद्यालय, काटवा (झुंझुनू)
94 श्री ज्ञानसिंह चौहान	रा. उ. मा. वि., कांकरोली
95 श्री फतहलाल गुर्जर	रा. उ. प्रा. वि., (प्रथम) कांकरोली
96 श्री शिवराज छंगाणी	नत्थूसर गेट, बीकानेर
97 श्री अचलसिंह राजावत	रा. सादुल उ मा. वि., बीकानेर